कुरुक्षेत्र

ग्रामीण विकास को समर्पित

वर्ष 51 अंक : 3 जनवरी 2005 मूल्य : सात रुपये

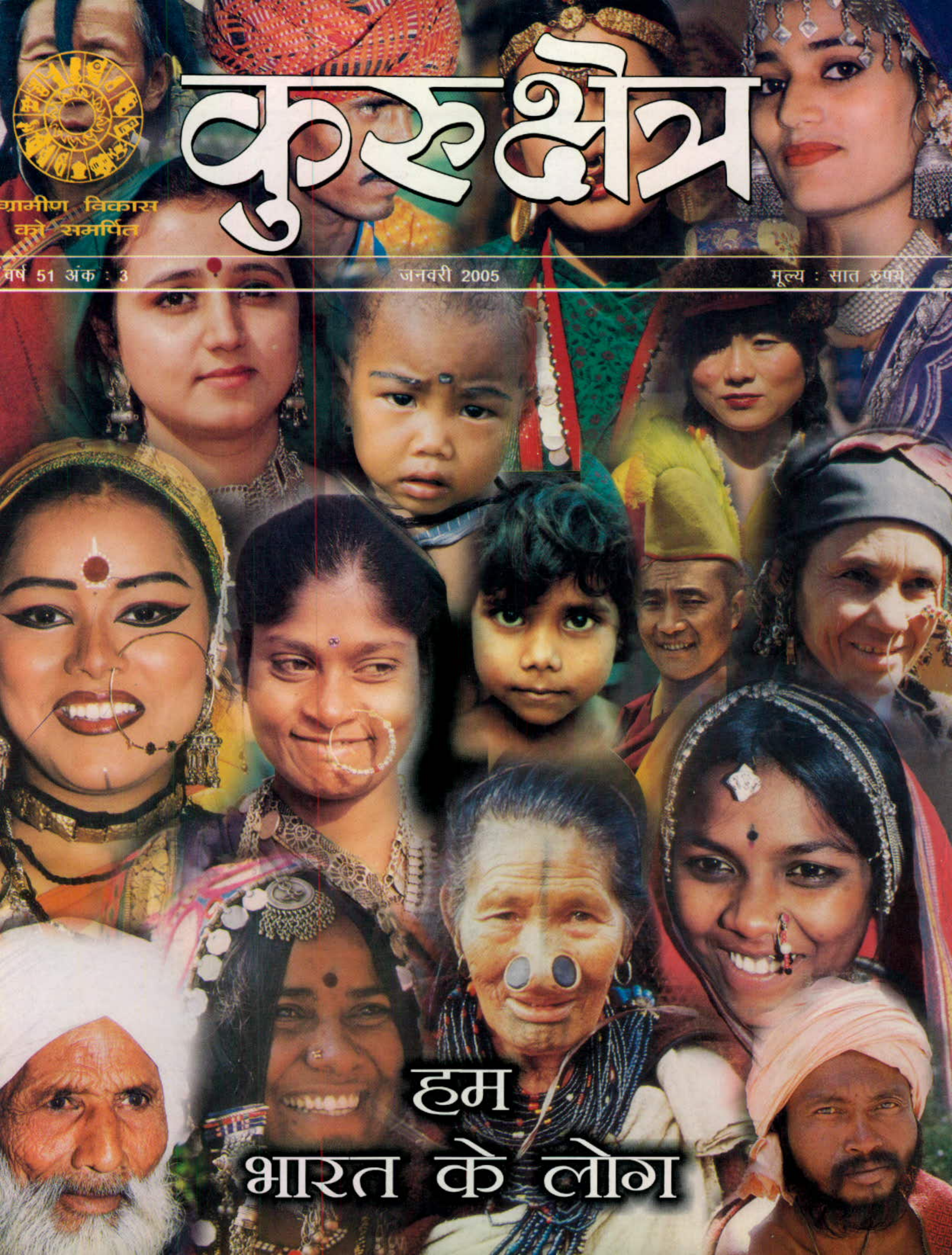

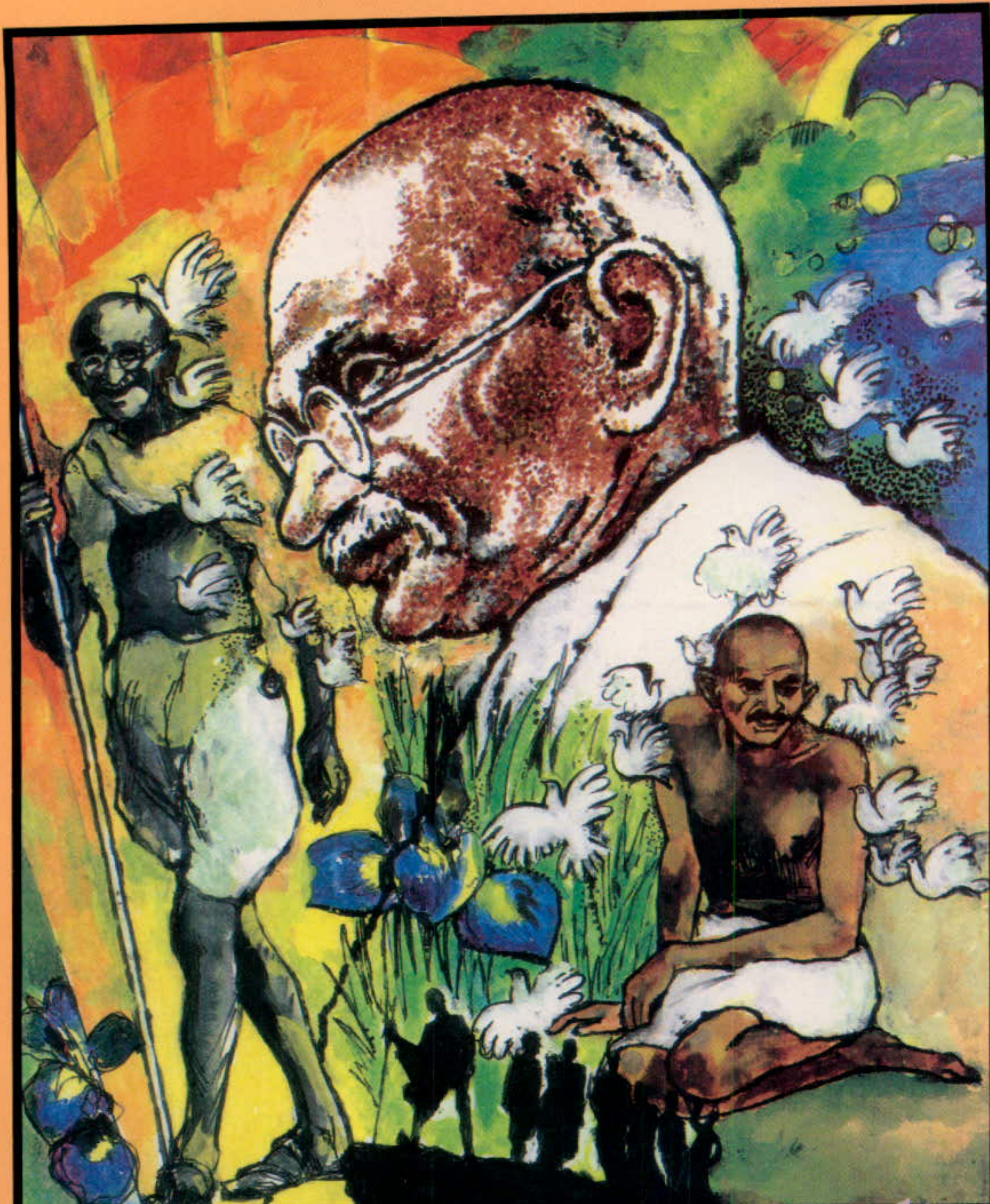

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की
57वीं पुण्य तिथि के अवसर पर
भावभीनी श्रद्धांजलि

कुरुक्षेत्र

ग्रामीण विकास मंत्रालय की प्रमुख मासिक पत्रिका

वर्ष : 51 ● अंक : 3

पौष–माघ 1926

जनवरी 2005

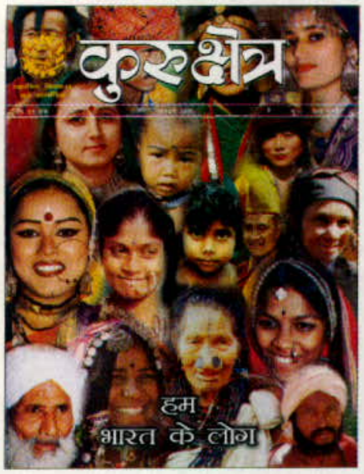

संपादक
स्नेह राय

उप संपादक
जयसिंह

संपादकीय पत्र–व्यवहार

संपादक, कुरुक्षेत्र
कमरा नं. 655/661, 'ए' विंग,
गेट नं. 5, निर्माण भवन
ग्रामीण विकास मंत्रालय
नई दिल्ली–110011
दूरभाष : 23015014,
फैक्स : 011–23015014
तार : ग्राम विकास
वेबसाइट : Publicationsdivision.nic.in
ई–मेल : dpd@sh.nic.in dpd@pub.nic.in

संयुक्त निदेशक (उत्पादन)
एन.सी. मजुमदार

व्यापार प्रबंधक
जगदीश प्रसाद

दूरभाष : 26105590, फैक्स : 26175516

आवरण
राहुल शर्मा

सज्जा
अजय भंडारी

मूल्य एक प्रति	:	सात रुपये
वार्षिक शुल्क	:	70 रुपये
द्विवार्षिक	:	135 रुपये
त्रिवार्षिक	:	190 रुपये

विदेशों में (हवाई डाक द्वारा)

पड़ोसी देशों में	:	500 रुपये (वार्षिक)
अन्य देशों में	:	700 रुपये (वार्षिक)

इस अंक में

● भारत में ग्रामीणों का सामाजिक–आर्थिक विकास : योजनाएं और भावी संभावनाएं	टी.एस. अनुराग	3
● भारतीय कृषि : उपलब्धियां और चुनौतियां	डा. संगीता सारस्वत, डा. श्यामसुंदर सिंह चौहान	9
● वैश्वीकरण के दौर में भारत	नरेंद्र सिंह, दीपा शर्मा	12
● ग्रामीण विकास में प्रौद्योगिकी की भूमिका	जनक सिंह मीणा	14
● उदारीकरण का कृषि और ग्रामीण विकास पर प्रभाव	ऋचा मित्तल	17
● उत्तरांचल में ग्रामीण विकास – चुनौतियां और संभावनाएं	पुष्पेश पंत	20
● राष्ट्रीय कृषि विज्ञान संग्रहालय : एक अनूठा संस्थान	रमेश चंद्रा	22
● बीमा : संकट में सहयोग	ओम प्रकाश कश्यप	24
● लघु एवं कुटीर उद्योगों की उपयोगिता	डा. सूर्य भान सिंह	26
● खादी और हस्तशिल्प : ग्रामीणों की जीवन रेखा	संजय कुमार रोकड़े	29
● डीपीआईपी : गरीबी उन्मूलन की अनूठी परियोजना	डा. सुरेंद्र कटारिया	30
● बंद पड़ी भूमिगत खानों में खेती	डा. ए.के. दुबे	32
● पचमढ़ी : पर्यटन की गढ़ी	डा. प्रदीप कुमार सिंह, डा. शिव प्रकाश अग्निहोत्री	34
● राजस्थान का पर्यटन उद्योग – एक नजर	डा. रवि कुमार दाधीच	37
● रेशम कीटपालन, आमदनी का साधन	ममता भारती	39
● स्वसहायता समूहों के माध्यम से धान मिलिंग– एक अभिनव कदम	डा. गजेंद्र कुमार	41
● गन्ने की खेती ने बदली तस्वीर	पूषण कुमार	43
● लोक कलाकार भंवरी देवी	ओम प्रकाश कादयान	44
● झारखंड का टुसू पर्व	भीष्मदेव महतो	45
● मलेरिया : एक अंतर्राष्ट्रीय चुनौती	डा. विनोद गुप्ता	46
● कुष्ठ रोग को अलविदा कहना होगा	अमिता गर्ग	48

कुरुक्षेत्र की एजेंसी लेने, ग्राहक बनने और अंक न मिलने की शिकायत के बारे में व्यापार प्रबंधक, (वितरण एवं विज्ञापन) प्रकाशन विभाग, पूर्वी खंड–4, लेवल–7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली–110 066 से पत्र–व्यवहार करें। विज्ञापनों के लिए सहायक विज्ञापन प्रबंधक, प्रकाशन विभाग, पूर्वी खंड–4, लेवल–7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली–110 066 से संपर्क करें। दूरभाष : 26105590, फैक्स : 26175516

कुरुक्षेत्र में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। यह आवश्यक नहीं कि सरकारी दृष्टिकोण भी वही हो।

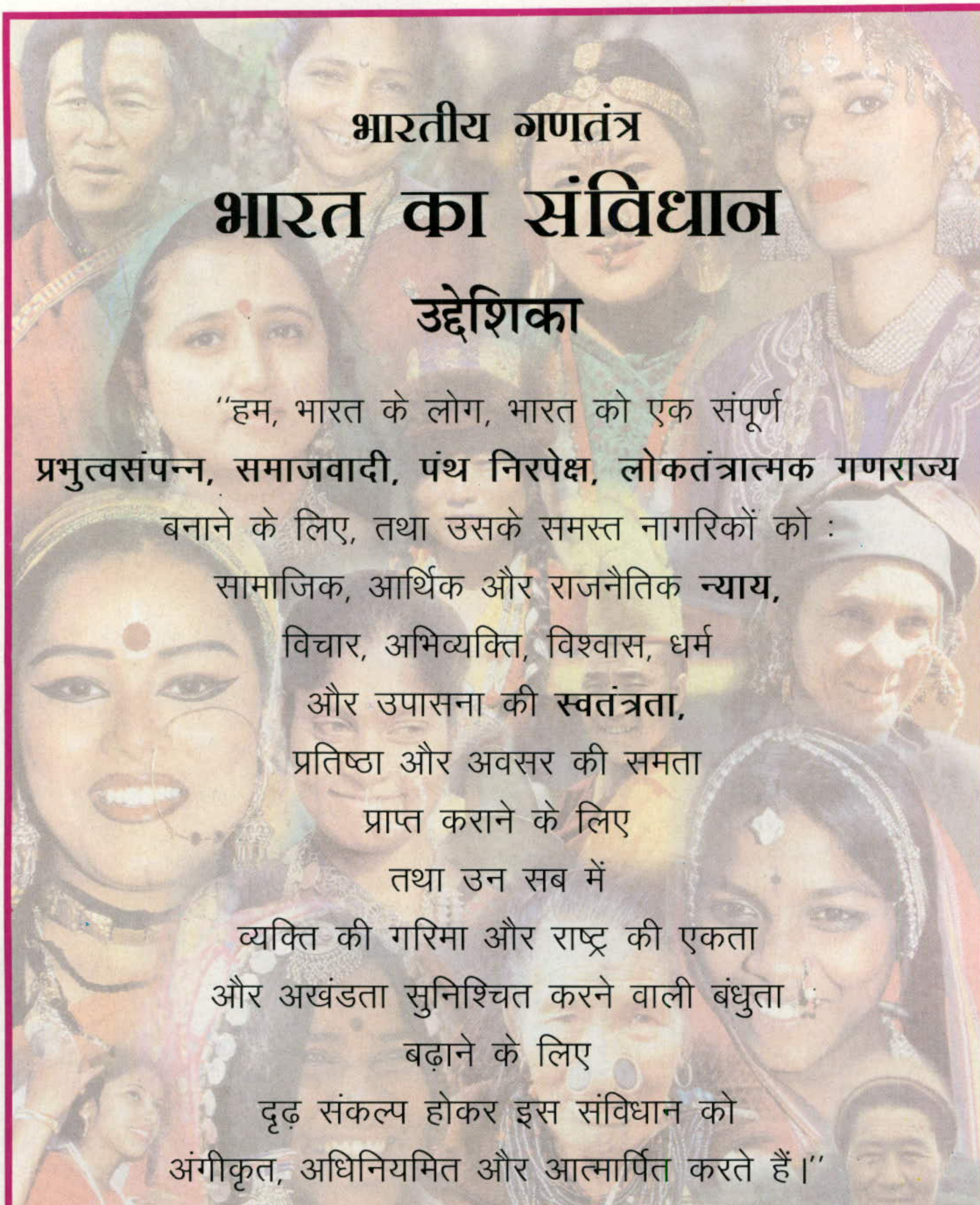

भारतीय गणतंत्र

भारत का संविधान

उद्देशिका

"हम, भारत के लोग, भारत को एक संपूर्ण
प्रभुत्वसंपन्न, समाजवादी, पंथ निरपेक्ष, लोकतंत्रात्मक गणराज्य
बनाने के लिए, तथा उसके समस्त नागरिकों को :
सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक **न्याय,**
विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म
और उपासना की **स्वतंत्रता,**
प्रतिष्ठा और अवसर की समता
प्राप्त कराने के लिए
तथा उन सब में
व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता
और अखंडता सुनिश्चित करने वाली बंधुता
बढ़ाने के लिए
दृढ़ संकल्प होकर इस संविधान को
अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।"

भारत में ग्रामीणों का सामाजिक-आर्थिक विकास : योजनाएं और संभावनाएं

टी. एस. अनुराग

भारतीय संस्कृति दुनिया की एक अद्वितीय मिसाल है, जो मुख्य रूप से नैतिकता और आध्यात्म पर टिकी हुई है। विश्व की कुछ महत्वपूर्ण संस्कृतियां जैसे बेबिलोन, इजिप्ट, ग्रीस, रोम आदि की संस्कृति एक समय में ऊंचे उठकर कुछ काल उपरांत नष्टप्राय हो गईं, परंतु भारतीय संस्कृति आज भी जीवित है। सदियों से भारत की सभ्यता व संस्कृति उच्च कोटि की रही है। प्राचीन भारत में भौतिकता व आध्यात्म का अदभुत समन्वय प्रत्येक गांव में बहता था। भारत जैसे विशाल देश की संस्कृति विश्व में अद्वितीय स्थान रखती है। परंतु विडम्बना यह है कि आधुनिकता की वर्तमान अंधी दौड़ में हम अपने गांव को हेय दृष्टि से देखने लगे हैं। जबकि वास्तविकता यह है कि "अगर गांव का नाश होता है तो भारत का ही नाश हो जावेगा। उस हालत में भारत, भारत नहीं रहेगा और दुनिया को उसे जो संदेश देना है, उस संदेश को वह खो देगा।"

भारत सदियों से एक कृषि प्रधान देश रहा है और यदि हम भारत में ग्रामीणों के सामाजिक-आर्थिक विकास का अध्ययन करना चाहते हैं तो हमें भारत के पूर्व इतिहास पर भी नजर डालनी होगी।

स्वतंत्रता के पूर्व का भारत

भारत पर विभिन्न समयों में बाह्य आक्रमण हुए हैं। औरंगजेब के शासन काल (सन् 1707) तक भारत की अर्थव्यवस्था पनपती रही लेकिन उसके उपरांत विशेषकर अंतिम मुगल शासक नादिरशाह के शासनकाल में इस पर ऐसा प्रहार किया गया जिसने विशेष हानि पहुंचाना प्रारंभ किया। युगों से कृषि भूमि पर ग्रामीण कृषकों का स्वतंत्र अधिकार रहा है। लेकिन नादिरशाह ने जमींदारी-मालगुजारी की विशेष प्रथा अपनाकर कृषकों के भूमि पर के अधिकार को ही समाप्त कर दिया।

मुगल काल में हमारे गांवों में जमींदारी-जागीरदारी के कुछ कड़वे अनुभव तो हुए परंतु गांव का संगठन सुरक्षित था। जबकि ब्रिटिश साम्राज्य में गांवों के संगठन पर गहरा आघात किया गया। कारण यह था कि हमारा संगठन इस प्रकार का था कि हर गांव एक स्वतंत्र इकाई थी। तत्कालीन शासकों को एक विचित्र पहेली बुझानी थी कि आखिर वे शासन किस पर करें! इस हेतु मालगुजारी प्रथा, लगान नगद में प्राप्त करना, कृषकों को कोई संरक्षण न देना, घर-घर अपनाए गए सूती वस्त्र उद्योगों को नष्ट करना, लघु और कुटीर उद्योगों का पतन, लौह उद्योगों के व्यापारिक रहस्य हासिल करना, शिक्षा प्रणाली में परिवर्तन, पंचायतों के अस्तित्व की समाप्ति, न्याय प्रणाली में परिवर्तन आदि ऐसे उपाय खोजे गए जिन्होंने ग्राम संगठन की जड़ें ही हिला दीं। धीरे-धीरे भारत कच्चे माल का निर्यातक और पश्चिमी देशों के औद्योगिक माल का आयातक देश बन गया और गांवों में गरीबी तथा प्रच्छन्न बेरोजगारी व्याप्त हो गई। इस प्रकार भारत लुटता चला गया। पहले शहर गांवों पर निर्भर थे, अब गांव शहर पर आश्रित हो गए।

इसी के उपरांत अंग्रेजी शासन काल में वारेन हेस्टिंग्ज 1774 में गवर्नर-जनरल बनकर भारत आया। उससे यह आशा की गई थी कि वह यहां के कृषकों का भूमि पर सदियों से चला आ रहा स्वतंत्र अधिकार उन्हें वापिस लौटा देगा। लेकिन उसने भी नादिरशाह की कुरीति को अपनाकर उस पर अपनी मुहर ही लगा दी। इतना ही नहीं, उसने लगान की वसूली को अनाज के स्थान पर नगद राशि में भुगतान करने की प्रणाली अपनाकर कृषकों के साथ अन्याय किया। कृषकों को अपनी फसल बेचने हेतु नए सिरे से प्रयास करना पड़ा और इसका लाभ उठाकर मध्यस्थों की नई श्रृंखला जुड़ गई। इस प्रकार एक कृषि प्रधान देश की प्रमुख अर्थव्यवस्था कृषि पर व्यवधान आने से उससे जुड़ी अनेक समस्याओं के साथ गरीबी का अभिशाप तेजी के साथ हमारे ग्रामीण झेलने लगे।

भारत के योजनागत विकास में पंडित नेहरू की भूमिका

भारत के सर्वांगीण विकास के लिए नियोजित विकास की कल्पना आजादी से पहले ही कर ली गई थी। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने 1938 में जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में एक 'नेशनल प्लानिंग कमेटी' गठित की थी। आधुनिक भारत के निर्माता पं. जवाहरलाल नेहरू जब देश के पहले प्रधानमंत्री बने तो उन्होंने नियोजित विकास को सही गति देने के लिए पंचवर्षीय योजनाओं का प्रारूप तय किया और उसके प्रभावी क्रियान्वयन पर बल दिया। मार्च 1950 में स्वयं पं. नेहरू की अध्यक्षता में 'योजना आयोग' का गठन किया गया। 15 माह के अथक प्रयास के बाद प्रथम योजना का 'हेरोड माडल' सामने आया। इस प्रकार की योजना को अपनाकर रूस का आर्थिक विकास और निम्न स्तर के व्यक्तियों को ऊंचा उठाने का सफल प्रयास स्वयं नेहरू ने अवलोकित किया था और उनके अन्दर वही छाप पूर्णतः बैठ चुकी

थी। विश्व का सबसे बड़ा प्रजातंत्र खड़ा करने का श्रेय उन्हीं को जाता है।

जब देश आजाद हुआ तो स्थितियां बदली हुई थीं। नब्बे साल तक चले स्वाधीनता संग्राम (1857–1947) के निर्णायक दौर में अंतर्राष्ट्रीय दृश्यपटल पर भी कई बदलाव हुए थे। दो विश्वयुद्धों की विभीषिका ने यूरोपीय देशों की कमर तोड़ कर रख दी। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद आर्थिक मंदी और अकाल का भारतीय अर्थव्यवस्था पर भी प्रतिकूल असर पड़ा था। ब्रिटिश राज का जब खात्मा हुआ तब उस दौर में भारत में एक सूई तक नहीं बनती थी। ब्रिटिश शासकों ने कृषि, उद्योग–धंधे, दस्तकारी आदि सबका बुरा हाल कर रखा था। अंतर्राष्ट्रीय परिदृश्य में समाजवादी और पूंजीवादी अर्थव्यवस्था एक साथ विकसित हो रही थी। ऐसे में साम्राज्यशाही–उपनिवेशवादी शासन के चंगुल से जो राष्ट्र मुक्त हो रहे थे उनके लिए पूंजीवादी अथवा समाजवादी आर्थिक माडल में एक को अपनाना जरूरी था। नए राष्ट्रों को अपने खेमे में शामिल करने के लिए संयुक्त राज्य अमरीकी और सोवियत संघ वर्षों तक गलाकाट प्रतिस्पर्धा में जूझते रहे। ऐसे में आजाद भारत ने नियोजित विकास के लिए दीर्घकालिक योजनाओं के क्रियान्वयन पर बल दिया। नेहरूजी ने अपने शासन काल के दौरान न सिर्फ भारत को अमरीका अथवा सोवियत संघ का पिछलग्गू होने से बचाया बल्कि समाजवादी और पूंजीवादी आर्थिक माडलों से श्रेष्ठतम को खंगालते हुए मिश्रित अर्थव्यवस्था पर आधारित पंचवर्षीय योजनाओं की अवधारणा पर बल दिया। इन पंचवर्षीय योजनाओं की सबसे बड़ी खासियत यह रही कि इसमें कृषि–उद्योग–व्यापार–शिक्षा–सेवा आदि क्षेत्रों में विकास के लिए स्पष्ट लक्ष्य सामने रखकर क्रियान्वयन का मौका दिया गया, सार्वजनिक क्षेत्र का उल्लेखनीय विकास किया जा सका, नए कल–कारखाने लगाए गए, बड़े–बड़े बांध बनाए गए व सीमेंट और स्टील के आधारभूत उद्योग स्थापित किए गए।

वर्तमान भारत

आजादी के 57 वर्ष बीत जाने तथा योजनाबद्ध विकास के 53 वर्ष पूर्ण हो जाने के बाद आज ग्रामीण विकास के संदर्भ में यदि भारत की उपलब्धियों का अध्ययन किया जाए तो हम पाते हैं कि स्वतंत्रता के पश्चात से ही भारत में ग्रीमणों के सामाजिक एवं आर्थिक विकास के लिए विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से प्रयास किए जाते रहे हैं। लगभग सभी पंचवर्षीय योजनाओं में गरीबी उन्मूलन, स्वास्थ्य तथा चिकित्सा सुविधाओं की उपलब्धता, शिक्षा और साक्षरता, स्थायित्व के साथ विकास, मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ती, जनसंख्या वृद्धि में नियंत्रण, बेरोजगारी निवारण, आत्मनिर्भरता की प्राप्ति आदि क्षेत्रों पर प्रमुख रूप से ध्यान दिए जाने की बात कही जाती रही है। इस प्रकार नौ पंचवर्षीय योजनाओं तथा चार वार्षिक योजनाओं का यह सफर विभिन्न सफलताओं और असफलताओं के साथ वर्तमान में दसवीं योजना के साथ अग्रसर है।

भारत वर्ष में गांवों की संख्या स्वतंत्रता पूर्व 7.5 लाख थी जो वर्तमान में घटकर 5 लाख 80 हजार 779 रह गई है। भारत के गांवों की आबादी सन् 1951 में 29.86 करोड़ थी जो सन् 2001 में बढ़कर 74.2 करोड़ हो चुकी है। ऐसी स्थिति में भारत को विकसित राष्ट्र बनाने के लिए ग्रामीणों का सामाजिक एवं आर्थिक विकास एक अहम् और मूलभूत आवश्यकता है। महात्मा गांधी के शब्दों में कहा जाए तो गांवों में ही भारत की आत्मा बसती है। भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में अधिकतर लघु तथा सीमांत कृषकों, खेतीहर मजदूरों तथा अन्य श्रमिकों, शिल्पियों, व्यावसायिक एवं सेवा करने वाले परिवारों का ही बाहुल्य है, परंतु आज भी इनमें से अधिकांश परिवार गरीबी रेखा के नीचे जीवन व्यतीत कर रहे हैं। अतः कहा जा सकता है कि भारत का सामाजिक एवं आर्थिक विकास ग्रामीण क्षेत्रों के बुनियादी विकास पर ही आधारित है।

इसी कड़ी में हमारी दसवीं पंचवर्षीय योजना (2002–2007) में योजना आयोग के द्वारा अगले 10 वर्षों के लिए 'मानव विकास निर्देशांक' (Human Development Goals & Targets) का भी निर्धारण किया गया है, जो निम्न प्रकार है :

प्रमुख मानव विकास निर्देशांक

- गरीबी के अनुपात में 2007 तक 5 प्रतिशतांक और 2015 तक 15 प्रतिशतांक की कमी;
- दसवीं योजना की अवधि में श्रम बल में जुड़ने वाले लोगों को उच्च गुणवत्ता वाला लाभकारी रोजगार प्रदान करना;
- सभी बच्चों को 2003 तक स्कूलों में भर्ती करना; सभी बच्चों द्वारा 2007 तक 5 वर्ष की स्कूल शिक्षा पूरी करना;
- साक्षरता और मजदूरी की दरों में पुरुषों और महिलाओं में असमानताओं को 2007 तक कम से कम 50 प्रतिशत तक कम करना;
- जनसंख्या में वृद्धि की दशकीय दर को वर्ष 2001 और 2011 के बीच की अवधि में घटाकर 16.2 प्रतिशत करना;
- योजना अवधि में साक्षरता दर 75 प्रतिशत तक बढ़ाना;
- शिशु मृत्यु दर को घटाकर वर्ष 2007 तक 20 प्रति हजार और 2012 तक 10 प्रति हजार तक लाना;
- वनों और वृक्षों के आवरण (कवर) को बढ़ाकर वर्ष 2007 तक 25 प्रतिशत और 2012 तक 33 प्रतिशत तक करना;
- योजना अवधि के अंदर पीने योग्य पेय जल तक सभी गांवों की सतत पहुंच की व्यवस्था करना;

वर्तमान में भारत एक महत्वपूर्ण दौर से गुजर रहा है। 1980 के दशक में हमारा सकल घरेलू उत्पाद (GDP) जो 5.7 प्रतिशत था, बढ़कर आठवीं और नौवीं पंचवर्षीय योजना अवधि में औसत रूप से 6.5 प्रतिशत होने से भारत विश्व के सबसे तेजी से बढ़ने वाले दस विकासशील देशों में से एक बन गया है। कुछ अन्य क्षेत्रों में भी उत्साहजनक प्रगति हुई है। चार दशकों में पहली बार जनसंख्या में वृद्धि दर घटकर 2 प्रतिशत से कम हुई है। साक्षरता, जो 1991 में 52 प्रतिशत थी, बढ़कर 65 प्रतिशत हो गई है, ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी अनुपात जो सन् 1973–74 में 54.4 प्रतिशत था 1999–2000 में घटकर 27.09 प्रतिशत पर आ गया है।

परन्तु अनेक उपलब्धियों के बाद भी विकास के कई ऐसे पहलू हैं जहां हमारी प्रगति स्पष्ट रूप से निराशाजनक है। उदाहरण के रूप में गरीबी, अज्ञान, बीमारियों और महिलाओं में अवसरों की विषमता मिटाने जैसे मुख्य कार्यों के सन्दर्भ में हमारी सफलताओं पर प्रश्न

चिन्ह लगे हुए हैं। 'भारत में 21वीं सदी के आरंभ में 26 करोड़ व्यक्ति गरीबी रेखा के नीचे जीवनयापन कर रहे थे। इस 26 करोड़ का 74.31 प्रतिशत भाग गांवों में निवास करता था। विश्व के गरीब लोगों में 22 प्रतिशत व्यक्ति भारत में ही बसते हैं। हमारी सभी पंचवर्षीय योजनाओं का एक मुख्य मुद्दा गरीबी दूर करना रहा है। इसमें तनिक भी संदेह नहीं है कि गरीबी मिटाना संपूर्ण मानवता के सामने एक गंभीर समस्या है। विश्व से गरीबी मिटाने के अंतर्राष्ट्रीय लक्ष्य को अपनाने की मानवीय आधार वाला यह मुद्दा एक ऐसी आर्थिक नीति की खोज कर रहा है जिससे विश्व के 1/5 व्यक्ति जो गरीबी रेखा के नीचे जीवनयापन कर रहे हैं इस दुष्चक्र से मुक्ति पा सकें। भारत में 34.7 प्रतिशत जनसंख्या एक डालर प्रतिदिन से कम पर जीवनयापन कर रही है। योजना आयोग के अनुसार गरीब लोगों की प्रतिशतता में कमी तो आई है, हालांकि यह उतनी नहीं है, जितना कि लक्ष्य रखा गया था। चालू दैनिक स्थिति के आधार पर बेरोजगारी की मात्रा 7 प्रतिशत से अधिक है। ग्रामीण क्षेत्रों में 1–5 वर्ष की आयु के आधे से अधिक बच्चे अल्पपोषित हैं, जिनमें बालिकाओं की स्थिति अधिक गंभीर है। शिशु मृत्यु दर 72 प्रति हजार है। गांवों में 75 प्रतिशत से अधिक बीमारियां पर्यावरण के स्वच्छ न होने के कारण होती हैं। लगभग 60 प्रतिशत ग्रामीण घरों में बिजली कनेक्शन नहीं हैं। पिछले दशक में बाल लिंग अनुपात में आई गिरावट महिलाओं की स्वतंत्रता और समानता के संवैधानिक आश्वासनों के पूरा होने पर प्रश्न चिन्ह लगा रही हैं। शिक्षा के क्षेत्र में हमारा कार्य निष्पादन हमारी विकास की कार्यनीति का सर्वाधिक निराशाजनक पहलू है। 6–14 वर्ष के आयु वर्ग में लगभग 200 मिलियन बच्चों में से केवल 120 मिलियन बच्चे स्कूलों में हैं और प्राथमिक स्तर पर निवल उपस्थिति कुल नामांकनों का केवल 66 प्रतिशत है। स्वास्थ्य उपचर्या के बुनियादी ढांचे के सृजन और जनशक्ति संबंधी मापदण्ड समूचे देश में एक समान होने के बावजूद स्वास्थ्य उपचर्या सेवाओं की उपलब्धता और उनके उपयोग तथा जनता के स्वास्थ्य के सूचकांकों में अंतर्राज्यीय एवं अंतर्जिला अंतर बहुत अधिक है।'

प्रमुख ग्रामीण विकास योजनाओं का संक्षिप्त इतिहास

भारत में ग्रामीणों को स्वरोजगार के अवसर पैदा करके गरीबी निवारण हेतु, ग्रामीण क्षेत्रों के गरीब मजदूरों, भूमिहीनों, श्रमिकों और बेरोजगारों को मजदूरी आधारित रोजगार दिलाने, खाद्य सुरक्षा और बुनियादी सुविधाएं मुहैया कराने के लिए और असंतुलनों को दूर करने के लिए, कमजोर और पिछड़े वर्गों, बालकों, महिलाओं, वृद्धों तथा विकलांगों आदि को विशेष सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने एवं उनके सशक्तिकरण के अहम् उद्देश्यों हेतु अनेक कार्यक्रम और योजनाएं विगत वर्षों में प्रमुख रूप से चलाए जा रहे हैं।

ग्रामीण विकास हमारे देश में कोई नया मुद्दा नहीं है, बल्कि काफी पहले से सरकार इस ओर विशेष ध्यान दे रही है। हमारे कुछ प्रमुख ग्रामीण विकास कार्यक्रमों में 2 अक्तूबर 1952 को महात्मा गांधी के जन्म दिवस से प्रारंभ की गई 'सामुदायिक विकास योजना' गांव के विकास के लिए सर्वप्रथम कड़ी थी। इसके उपरांत द्वितीय योजना काल में सभी ग्रामों को 5000 'राष्ट्रीय विस्तार खंड' के माध्यम से ग्राम विकास कार्यक्रम अपनाने हेतु चयन कर लिया गया। 'सामुदायिक विकास योजनाओं' को आशातीत सफलता नहीं मिलने के कारण 1970 में 'समग्र ग्रामीण विकास' की ओर योजना तथा विकास विभाग का ध्यान गया। पांचवी योजना में जब देखा गया कि गरीबी रेखा पर रहने वालों का कोई विकास नहीं को सका तो 'न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम' 1974–75 में सामने आया। छठी योजना में इसके स्वरूप को और विस्तार देने हेतु 'समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम' (आईआरडीपी) लागू किया गया। इसके साथ–साथ '20 सूत्रीय कार्यक्रम' व 'जीवनधारा' (एम डब्ल्यू एस) के तहत अनेक छोटे ग्रामीण विकास कार्यक्रम अपनाये गये। सातवीं योजना में एक विशेष कार्यक्रम 'इन्दिरा आवास योजना' (आईएवाई) व 'ग्रामीण युवा स्वरोजगार प्रशिक्षण कार्यक्रम' (ट्राइसेम) अपनाया गया, इसके अतिरिक्त 'राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम' एनआरईपी तथा 'ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम' (आरएलईजीपी) को समाहित कर 'जवाहर रोजगार योजना' जेआरवाई बनाया गया। आठवीं योजना काल में 73वां संविधान संशोधन के द्वारा 'पंचायत राज' की स्थापना, 'रोजगार गारंटी योजना' (ईएएस) वर्ष में '100 दिवस कार्य योजना', 'राष्ट्रीय सामाजिक सहायता कार्यक्रम' व 'गंगा कल्याण योजना' (जीकेवाई) सामने आई। धीरे–धीरे गलतियों में सुधार होता चाला गया एवं योजनाओं का दोहराव भी समाप्त होता गया। योजनाओं में स्थायित्व आने से क्रियान्वयन में भी सुधार दिखने लगा। 1980 से 1990 के दशक में भारत सरकार की आर्थिक नीति ने निजीकरण को मान्यता दी। अंतर्राष्ट्रीय व्यापार क्षेत्र में आयात–निर्यात नीति में ढिलाई दी गई लेकिन अनिवासी भारतीयों ने (जैसी कि उनसे अपेक्षा की गई थी) कृषि क्षेत्र तथा प्राथमिक उद्योगों की ओर कोई ध्यान नहीं दिया। नौवीं योजना में अनेक ग्रामीण विकास योजनाओं में समन्वय किया गया जैसे 'स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना' (एसजीएसवाई) में पूर्व से से संचालित छः प्रमुख योजनाओं, जैसे – 'समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम' (आईआरडीपी), 'ग्रामीण युवा स्वरोजगार प्रशिक्षण कार्यक्रम' (ट्राईसेम), 'ग्रामीण महिला और बाल विकास कार्यक्रम' (ड्वाकरा), 'ग्रामीण कारीगरों को उन्नत किस्म के औजार किट की आपूर्ति' (सिट्रा), 'गंगा कल्याण योजना' (जीकेवाई), 'दस लाख कुओं की योजना' (एमडब्ल्यूएस) का स्थान ले लिया। इसी प्रकार 'सम्पूर्ण ग्राम समृद्धि योजना' एवं 'रोजगार आश्वासन योजना' को समाहित कर 'सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना' (एसजीआरवाई) चालू की गई।

प्रमुख ग्रामीण योजनाओं पर एक नजर

विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान चालू की गई प्रमुख ग्रामीण योजनाओं को चार भागों में विभक्त कर तालिकाओं के माध्यम से दर्शाया गया है। प्रथम तालिका में पंचवर्षीय योजनाओं में स्वरोजगार हेतु प्रारंभ की गई प्रमुख ग्रामीण योजनाएं, द्वितीय तालिका में मजदूरी आधारित प्रमुख ग्रामीण योजनाएं और तृतीय तालिका में ग्रामीणों को सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने एवं उनके सशक्तिकरण हेतु प्रारंभ की गई प्रमुख योजनाएं प्रदर्शित की गई हैं।

तालिका–1

पंचवर्षीय योजनाओं में स्वरोजगार हेतु प्रारंभ की गई प्रमुख ग्रामीण योजनाएं

क्र.	योजना / कार्यक्रम का नाम	प्रारंभ होने का वर्ष	प्रमुख उद्देश्य
		पांचवीं पंचवर्षीय योजना	
1.	अंत्योदय योजना	1977–78	गरीबी की रेखा के नीचे जीवन यापन करने वाले परिवारों को आर्थिक सहायता पहुंचाना।
		छठी पंचवर्षीय योजना	
2.	ट्राइसेम (TRYSEM)	1979–80	गरीबी की रेखा के नीचे जीवन यापन करने वाले परिवारों के 18 से 35 वर्ष के युवाओं को तकनीकी प्रशिक्षण देकर स्वरोजगार दिलाना।
3.	आईआरडीपी (IRDP)	1980–81	गरीबी की रेखा के नीचे जीवन यापन करने वाले परिवारों को आर्थिक सहायता पहुंचाना, जिससे वे स्वरोजगार स्थापित कर गरीबी दूर कर सकें।
		आठवीं पंचवर्षीय योजना	
4.	ड्वाकरा (DWCRA)	1992–93	ग्रामीण महिलाओं को समूह में संगठित कर आत्मनिर्भर बनाने हेतु।
5.	उन्नत टूलकिट्स योजना (SITRA)	1992–93	ग्रामीण शिल्पियों के कौशल में सुधार तथा उनका शहरों की ओर पलायन रोकना, आय में वृद्धि।
6.	प्रधानमंत्री रोजगार योजना (PMRY)	1994–95	ग्रामीण एवं शहरी शिक्षित बेरोजगार युवकों को स्वयं उद्योग / सेवा / व्यवसाय स्थापित करने हेतु ऋण उपलब्ध कराना।
7.	इंदिरा महिला योजना (IMY)	1995–96	महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाने हेतु जागृत करना।
		नौवीं पंचवर्षीय योजना	
8.	स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना (SGSY)	1999–2000	गांवों में गरीब लोगों को स्वरोजगार अपनाने हेतु प्रेरित करना।
9.	निर्धनता उन्मूलन योजना	2000–2001	सर्वाधिक निर्धनता वाले जिलों में स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से स्वरोजगार विकसित करना (आंध्र प्रदेश)।

प्रमुख ग्रामीण विकास कार्यक्रमों की उपलब्धियां

विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान चालू की गई प्रमुख ग्रामीण योजनाओं की निर्धारित लक्ष्यों के विरुद्ध अर्जित उपलब्धियों को दो भागों में विभक्त कर योजनावार दर्शाया गया है।

इस प्रकार स्वतंत्रता के बाद से भारत में समग्र ग्रामीण विकास हेतु चलाई गईं एवं वर्तमान में चल रहीं महत्वपूर्ण योजनाओं के क्रियान्वयन हेतु अनेक प्रयास किए जा रहे हैं एवं इसके लिए विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में खर्च के प्रावधानों में भी वृद्धि हो रही है। वैसे तो सातवीं पंचवर्षीय योजना के पश्चात ही ग्रामीण विकास मंत्रालय के बजट के माध्यम से ग्रामीण विकास तथा गरीबी उन्मूलन संबंधी विभिन्न कार्यक्रमों के निवेश में काफी वृद्धि हुई है।

समग्र ग्रामीण विकास की अवधारणा

गांवों के संबंध में कहा गया है कि "ग्राम तो एक विशाल भूमि वाला भौगोलिक क्षेत्र होता है जहां लोग अपना घर बनाकर परिवार सहित निवास करते हैं, गांव की विशेषता यह है कि उसका क्षेत्रफल बड़ा होता है बनिस्बत शहरों के, जहां रहने के घरों की तुलना में उपलब्ध जमीन की मात्रा सीमित होती है। शहर तो सभ्य क्षेत्र है जहां रहने हेतु जमीन सीमित होती है, परंतु रहने के घरों की संख्या अधिक है, जिसके परिणामस्वरूप शहर में भीड़–भाड़ तथा सीमितता पाई जाती है। प्रो. संतोष कुमार दास के अनुसार "धरती के चार भाग होते हैं – 1. वास्तु, 2. कृषि योग्य भूमि, 3. गोचर भूमि, 4. जंगल। प्राचीन समय में वास्तु भूमि का मालिक किसान होता था....... ... जितने युद्ध हुआ करते थे गौ या खेतों के हरण के लिए हुआ करते थे गोचर भूमि और जंगल पर सबका अधिकार होता था।"

प्रत्येक ग्रामीण के लिए कृषि ही सर्वोपरि स्थान रखता है। 'प्राचीन काल में भारत के निवासी अपने स्वयं की भूमि पर कृषि कार्य करते थे। गांव का स्वावलंबी जीवन, भले ही उससे प्राप्त होने वाली आय नगण्य हो, शहर के ऐशो आराम की जिंदगी की अपेक्षा जहां वे आत्म–सम्मान से जी न सकें, कहीं अधिक

तालिका–2

पंचवर्षीय योजनाओं में प्रारंभ की गई मजदूरी आधारित प्रमुख ग्रामीण योजनाएं

क्र.	योजना/कार्यक्रम का नाम	प्रारंभ होने का वर्ष	प्रमुख उद्देश्य
		चौथी पंचवर्षीय योजना	
1.	ग्रामीण रोजगार क्रैश कार्यक्रम (CSRE)	1971–72	नए रोजगार बढ़ाकर ग्रामीण विकास हेतु।
2.	पाइलट गहन ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम	1972–73	गांव में निर्माण कार्य।
3.	सूखा आशंकित क्षेत्र कार्यक्रम (DPAP)	1973–74	सूखाग्रस्त ग्रामीण इलाकों में प्रकृतिक संसाधनों को विकसित करना।
		पांचवीं पंचवर्षीय योजना	
4.	मरुस्थल विकास कार्यक्रम	1977–78	मरुभूमि विस्तार प्रक्रिया नियंत्रण एवं पर्यावरण संतुलन बनाये रखने हेतु।
5.	काम के बदले अनाज योजना	1977–78	विकास प्रक्रियाओं के काम हेतु खाद्यान्न देना।
		छठी पंचवर्षीय योजना	
6.	राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम (NREP)	1980–81	ग्रामीण गरीबों को लाभकारी रोजगार के अवसर उपलब्ध कराना।
7.	ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम (RLEGP)	1983–84	भूमिहीन कृषकों व श्रमिकों को रोजगार उपलब्ध कराने हेतु।
		सातवीं पंचवर्षीय योजना	
8.	जवाहर रोजगार योजना (JRY)	1989–90	गांव में गरीबी की रेखा के नीचे जीवन यापन करने वाले बेरोजगार स्त्री एवं पुरुषों को अतिरिक्त लाभकारी रोजगार प्रदान करना।
		आठवीं पंचवर्षीय योजना	
9.	रोजगार आश्वासन योजना (EAS)	1993–94	गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले ग्रामीणों को अतिरिक्त रोजगार उपलब्ध कराना।
		नौवीं पंचवर्षीय योजना	
10.	जवाहर ग्राम समृद्धि योजना (JGSY)	1999–2000	गांवों में रोजगार तथा परिसम्पत्तियों का सृजन करना।
11.	राष्ट्रीय कृषि बीमा योजना	1999–2000	किसानों को उनकी फसल की बर्बादी से सुरक्षा प्रदान करना।
12.	खेतिहर मजदूर बीमा योजना	2001–2002	खेतिहर मजदूरों को बीमा सुरक्षा के साथ 60 वर्ष की आयु के बाद 100 रुपये प्रतिमाह पेंशन।

श्रेष्ठ रही है। गांव का समग्र विकास तभी संभव है जबकि सम्पूर्ण गांव की रचना तथा कृषि की संपूर्ण प्रक्रिया अर्थात सभी कुछ ऐसी हो कि प्रत्येक ग्रामीण को मूलभूत व ऐशो आराम की सभी वस्तुएं गांव के अपने विभिन्न साधनों द्वारा ही उपलब्ध हों। यह ध्यान रहे कि 'कृषि प्रबंधन संबंधी सारे नीति नियम पूर्व निर्धारित किए गए हैं।

प्राचीन काल में किसान धनवान होता था। उसकी आमदनी खेती से, पशुओं से, बागों और जंगलों की उपज से होती थी। उनमें कताई–बुनाई का काम फैला हुआ था। सूत, रेशम, ऊन और छाल आदि के सुन्दर–सुन्दर रंग वे स्वयं कर लेते थे। दूध, घी, तेल, मसाले और औषधियों का निर्माण गांव में ही होता था। उनके यहां तेल और गन्ना पेरने के कोल्हू थे, गौशाला थी, करघे थे, चरखी थी, कुएं व रहट से खेतों की सिंचाई होती थी। उनके बर्तन तांबे, पीतल, कांसे आदि के होते थे। उनके पास सोने और चांदी के आभूषण तथा सामग्रियां भी थीं। वे चित्रकारी करते थे, मूर्तियां बनाते थे और उनके बच्चे पढ़ते–लिखते भी थे। इस नीति का एक महत्वपूर्ण पहलू है : **जन सहयोग ही ग्रामीण अर्थशास्त्र की सफलता का रहस्य है जिसे दूसरे रूप में कहें स्वदेशी भावना।**

जबकि इस भावना के विपरीत बहती लहर ने ही भारत के लाखों छोटे उद्योगों को नष्ट प्राय कर दिया व विदेशी माल को, उनके कम कीमत तथा मशीनीकरण की उत्कृष्टता से लुभावने उत्पादन के कारण प्रोत्साहित किया गया। गरीबी को हमने स्वयं अपने ऊपर लाद दिया। हमने इस चेतावनी को नजर अंदाज कर दिया कि .... 'भारत की गरीबी तब शुरू हुई जब हमारे शहर विदेशी माल के बाजार बन गये और विदेशों का सस्ता तथा भद्दा माल गांवों में भरकर उन्हें चूसने लगे।'

इतिहास इस बात का साक्षी है कि भारत में ऐसी अर्थव्यवस्था सदियों से रही है जिसे अपनाकर प्रत्येक गांव अपनी आधारभूत जरूरत के लिए आत्मनिर्भर थे। विकेन्द्रित, अहिंसात्मक संरचना वाले गांवों की यह प्रमुख विशेषताएं रही हैं कि उनके संचालन शाश्वत स्वाभाविक प्रक्रिया पर आधारित रहे हैं। सभी को पर्याप्त जमीन, मकान, अनाज, कपड़ा आदि प्राप्त होता रहा है। कहा जाता है कि भारत में घी

तालिका–3

पंचवर्षीय योजनाओं में ग्रामीणों को सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने एवं उनके सशक्तिकरण हेतु प्रारंभ की गई प्रमुख ग्रामीण योजनाएं

क्र.	योजना / कार्यक्रम का नाम	प्रारंभ होने का वर्ष	प्रमुख उद्देश्य
		चौथी पंचवर्षीय योजना	
1.	बालवाड़ी पोषाहार कार्यक्रम	1970–71	बच्चों के पोषण तथा स्वास्थ्य की स्थिति में सुधार लाने हेतु।
		पांचवी पंचवर्षीय योजना	
2.	समेकित बाल विकास योजना	1975–76	बच्चों एवं गर्भवती महिलाओं के शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक विकास हेतु।
3.	प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम	1978–79	प्रौढ़ों को साक्षर कर जागृत करना।
		सातवीं पंचवर्षीय योजना	
4.	किशोरी बालिका योजना	1985–86	बालिकाओं के समग्र विकास को सुनिश्चित करने हेतु विशेष सुविधाएं प्रदान करना।
5.	व्यापक फसल बीमा योजना (CCIS)	1985–86	विभिन्न कृषि फसलों का बीमा कराने हेतु।
6.	सामाजिक सुरक्षा बीमा योजना	1988–89	दुर्घटना होने के पश्चात् आर्थिक राहत देने हेतु।
		आठवीं पंचवर्षीय योजना	
7.	बाल श्रम उन्मूलन योजना	1994–95	बाल श्रमिकों को खतरनाक उद्योगों से हटाकर स्कूल भेजने एवं वहीं रोजगार संबंधी प्रशिक्षण देना।
8.	राष्ट्रीय वृद्धावस्था पेंशन योजना	1994–95	गरीब एवं बेसहारा लोगों को 75 रुपए मासिक की पेंशन देना।
9.	राष्ट्रीय मातृत्व लाभ योजना	1994–95	गरीब परिवा की महिलाओं को गर्भावस्था के समय चिकित्सीय एवं आर्थिक सहायता देना।
10.	राष्ट्रीय पारिवारिक लाभ योजना	1994–95	रोजी कमाने वाले की मृत्यु हो जाने पर परिवार को 10,000 रुपये की सहायता।
11.	बालिका समृद्धि योजना	1997–98	बालिकाओं के विशेष रूप से स्वास्थ्य, पोषण, शिक्षा और प्रशिक्षण की व्यवस्था।
12.	कस्तूरबा गांधी शिक्षा योजना	1997–98	निम्न महिला साक्षरता वाले जिलों में बालिका विद्यालय स्थापित करना।
13.	लक्ष्य आधारित खाद्यान्न वितरण कार्यक्रम	1997–98	सस्ते दर पर खाद्यान्न आपूर्ति करना।
14.	महिला स्वशक्ति योजना	1998–99	महिलाओं के सामाजिक आर्थिक सशक्तिकरण हेतु।
		नौवीं पंचवर्षीय योजना	
15.	शिक्षा गारन्टी योजना	1999–2000	असेवित गांवों में प्राथमिकता विद्यालय की उपलब्धता सुनिश्चित करना।
16.	शिक्षा मित्र योजना	1999–2000	सभी प्राथमिक विद्यालयों में शिक्षकों की उपलब्धता सुनिश्चित करना।
17.	बाल विद्या बीमा योजना	1999–2000	बच्चों को शिक्षा व्यय की सुनिश्चित व्यवस्था करना।
18.	अन्नपूर्णा योजना	1999–2000	निराश्रित वृद्धों को प्रतिमाह निःशुल्क राशन उपलब्ध कराना।
19.	जनश्री बीमा योजना	2000–2001	गरीबों को बीमा सुरक्षा प्रदान करना।
20.	किशोरी शक्ति योजना	2000–2001	बालिकाओं के समग्र विकास को सुनिश्चित करने हेतु विशेष सुविधाएं प्रदान करना।
21.	सर्वशिक्षा अभियान योजना	2000–2001	सभी स्कूल जाने योग्य बच्चों को विद्यालयों में भेजने हेतु विशेष व्यवस्था सुनिश्चित करना।
22.	आश्रम बीमा योजना	2001–2002	उदारीकरण के कारण विस्थापित श्रम–शक्ति को सामूहिक बीमा की योजना।
23.	शिक्षा सहयोग बीमा योजना	2001–2002	गरीबी की रेखा के नीचे के कक्षा 9 से 12वीं तक के बच्चों को 100 रुपये प्रतिमाह छात्रवृत्ति।
24.	अन्त्योदय अन्न योजना	2000–2001	आर्थिक विपन्न लोगों को सस्ती दरों पर खाद्यान्न उपलब्ध कराना।
25.	जिला निर्धनता उन्मूलन योजना	2000–2001	सर्वाधिक गरीबी वाले जिलों में गरीबी निवारण हेतु रोजगार के अवसर पैदा करना (राज.)।
26.	राष्ट्रीय पोषाहार मिशन योजना	2001–2002	गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले परिवारों की किशोरियों, गर्भवती महिलाओं, नवजात शिशुओं का पोषण करने वाली महिलाओं को रियायती रूप से खाद्यान्न उपलब्ध कराना।

दूध की नदियां बहा करती थीं। भारत को सोने की चिड़िया कहा जाता रहा है। गांवों का प्रशासन, गांवों की न्यायपालिका, सामाजिक और धार्मिक रीति–रिवाजों का पालन अपने निर्धारित सिद्धांतों पर आधारित रहा है। पांच पंच हर गांव के लिए चुने जाते थे जो गांव की व्यवस्था देखते थे।

हमें गहराई से चिंतन करने की आवश्यकता है कि क्या पूर्व में हमारे 7.5 लाख गांव अपने में एक स्वतंत्र प्रजातांत्रिक इकाई नहीं थे? क्या भारत की अपनी खूबसूरत अर्थव्यवस्था नहीं थी? क्या वैश्विक संगठन इसे अपनाने में कोई दिशा–निर्देश देने की तनिक भी क्षमता रखते हैं। आज के तेजी से बदलते युग में हमें स्वयं अपना भविष्य संवारना है तथा एक अनोखी आध्यात्मिक संस्कृति की मिसाल विश्व के सामने रखनी है, जहां जीवन की प्रत्येक अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति ठीक उसी प्रकार प्राकृतिक ढंग से सविचार पूर्वक कठोर परिश्रम पर आधारित होगी, जिस प्रकार प्रकृति अपनी नियमितता से अपने आंतरिक नियम को अपनाकर निर्बाध गति से चली आ रही है। हमारे लिए उचित यही होगा कि हम अपनी सांस्कृतिक विरासत को न भूलें और आधुनिकता की लाभप्रद उपलब्धियों के साथ उसका मिश्रण कर विश्व के लिए, विशेषकर अविकसित तथा अर्धविकसित देशों के लिए आदर्श प्रस्तुत करें।

(लेखक रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.) के वाणिज्य संकाय में शोध छात्र हैं)

कुरुक्षेत्र मंगाने का पता

विज्ञापन और प्रसार व्यवस्थापक

प्रकाशन विभाग

पूर्वी खंड–4, तल–7

रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली–110066

मूल्य एक प्रति	: सात रुपये
वार्षिक शुल्क	: 70 रुपये
द्विवार्षिक	: 135 रुपये
त्रिवार्षिक	: 190 रुपये

विदेशों में (हवाई डाक द्वारा)

पड़ोसी देशों में	: 500 रुपये (वार्षिक)
अन्य देशों में	: 700 रुपये (वार्षिक)

भारतीय कृषि : उपलब्धियां और चुनौतियां

डा. संगीता सारस्वत, डा. श्यामसुंदर सिंह चौहान

भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि उत्पादकता की दृष्टि से वर्ष 2003–04 सफलताओं और उपलब्धियों का वर्ष रहा है किंतु यह प्रश्न अभी अनुत्तरित ही बना हुआ है कि क्या आगे भी इसी प्रकार की उपलब्धियां हासिल की जा सकेंगी। जनसंख्या में हो रही तीव्र वृद्धि के संदर्भ में यह प्रश्न अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है कि क्या भारतीय कृषि सारे देश के लिए स्थायी आधार पर खाद्यान्नों की आपूर्ति करने एवं कृषि से जुड़े 60 करोड़ से अधिक लोगों की राष्ट्रीय स्तर पर प्राप्त औसत प्रति व्यक्ति आय के स्तर पर रख पाने में सक्षम है। केंद्रीय सांख्यिकीय संगठन के अनुमानों के अनुसार वर्ष 2003–04 में कृषि एवं उससे संबंधित वस्तुओं के उत्पादन की संवृद्धि दर दो अंकों को पार कर गयी है। यह वृद्धि पिछले 14 वर्षों के अंतराल के बाद प्राप्त हुई। इससे पहले यह वृद्धि वर्ष 1988–89 में 15.5 प्रतिशत रही थी।

कृषि सदियों से भारतीय अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार रही है। किंतु स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से सरकार तीव्र विकास के लिए कृषि की अपेक्षा औद्योगीकीकरण पर बल देती रही है जिससे अर्थव्यवस्था पर कृषि का महत्व कम होता गया है। भारतीय किसान लंबे अर्से से विषम परिस्थितियों में जीवनयापन कर रहे हैं। किसानों की बदहाली, कुछ इलाकों को छोड़कर लगातार गहराती जा रही है। वर्ष 1950–51 में राष्ट्रीय आय में कृषि की भागीदारी लगभग 50 प्रतिशत थी। वर्ष 1999–2000 में घरेलू उत्पादन में कृषि की भागीदारी 25 प्रतिशत तथा वर्ष 2003–04 में मात्र 24 प्रतिशत रह गयी है।

आज भी कृषि एक ऐसा क्षेत्र बना हुआ है जहां श्रमिकों की बढ़ती संख्या के अधिकतम हिस्से को रोजगार प्राप्त है। यदि राष्ट्रीय आय में कृषि की हिस्सेदारी का अध्ययन किया जाए तो पता चलता है कि 80 के दशक में यह 38 प्रतिशत थी जो धीरे–धीरे घटकर 90 के दशक में 31 प्रतिशत तथा वर्ष 2001–02 में यह 24.7 प्रतिशत रह गयी। कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था में सकल घरेलू उत्पाद में कृषि की भूमिका का निरंतर कम होना एक चिंताप्रद विषय है। विडंबना यह है कि कृषि पर जनसंख्या का भार लगभग यथावत बना हुआ है किंतु राष्ट्रीय आय में उसका हिस्सा घटता जा रहा है। आजादी के समय 77 प्रतिशत जनसंख्या कृषि पर निर्भर थी जबकि आज देश की 69 प्रतिशत जनसंख्या कृषि पर निर्भर है। अर्थव्यवस्था में कृषि के पिछड़ेपन का तात्पर्य है देश की 69 प्रति जनसंख्या की आर्थिक स्थिति कमजोर है। भारत में कृषि विकास की अनेक संभावनाएं हैं किन्तु वित्तीय संसाधनों के अभाव में कृषि प्रणालियों में परिवर्तन कर पाना कठिन कार्य है। गांवों में एक बड़ा वर्ग गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने को बाध्य है। बड़ी संख्या में किसान दयनीय आर्थिक स्थिति के कारण अपने खेतों में उन्नत किस्म के बीज, रासायनिक उर्वरक, कीटनाशक तथा सिंचाई सुविधाओं का उपयोग नहीं कर पाते हैं तथा जो थोड़े–बहुत आर्थिक रूप से संपन्न किसान हैं वे सिंचाई सुविधाओं के अभाव में कृषि विकास को अपेक्षित गति नहीं दे सके हैं। भारतीय कृषि आजादी के 56 वर्ष बाद भी मानसून पर निर्भर रहने वाला जुआ है। कृषि उत्पादन भूमि के आकलन में आ रही गिरावट आसन्न खतरे की ओर संकेत कर रही है। खाद्यान्नों की खेती का लगातार कम लाभ का होते जाने से खाद्यान्नों के उत्पादन के अन्तर्गत क्षेत्रफल लगातार कम होता जा रहा है।

तालिका–1
कृषि योग्य भूमि में खाद्य पदार्थों के उत्पादन के अन्तर्गत क्षेत्रफल
(लाख हेक्टेयर)

1998–99	125.17
1999–00	123.10
2000–01	121.05
2001–02	121.91
2002–03	113.13

खाद्यान्नों के अन्तर्गत क्षेत्र में इस गिरावट का परिणाम देश के घरेलू बाजार पर भी पड़ रहा है। विनिर्मित वस्तुओं की मांग भी घटती जा रही है तथा औद्योगिक रोजगार के अवसर कम होते जा रहे हैं। अर्थव्यवस्था के कृषि प्रधान होने के कारण निर्यातित आय में कृषि एवं संबद्ध क्षेत्र का महत्वपूर्ण योगदान है। भारत में काफी, चाय और मेस्ताखली, तम्बाकू, काजू गिरी, मसाले, चीनी और मोलासिस, कच्चा जूट, चावल, मछली और मछली उत्पाद, मांस, फल, सब्जियां दालें, प्रसंस्करित खाद्य का निर्यात किया जाता है। कृषि एवं संबद्ध क्षेत्र के निर्यात को परम्परागत निर्यात कहा जाता है। विश्व के सकल निर्यात व्यापार में भारत की हिस्सेदारी 0.75 प्रतिशत से भी कुछ कम है जिसे कठिन अंतर्राष्ट्रीय प्रतियोगिता के बावजूद बढ़ाने के प्रयास किए जा रहे हैं। सम्भावना की दृष्टि से कृषि क्षेत्र निर्यात बढ़ाने में सहायक हो सकता है। हाल के वर्षों में कुल निर्यात में कृषि क्षेत्र का योगदान 15 से 20 प्रतिशत के बीच रहा है। इसमें पर्याप्त वृद्धि सम्भव है क्योंकि कृषि योग्य भूमि, विविधापूर्ण जलवायु, प्रचुर वर्षा जल के अलावा पैदावार बढ़ाने और उसकी किस्म सुधारने की प्रौद्योगिकी सहज ही उपलब्ध है। इतनी सारी अपार संभावनाएं इस देश में हैं उतनी अन्यत्र कहीं नहीं हैं फिर भी यहां कृषि क्षेत्र पिछड़ा

हुआ नजर आ रहा है। भारतीय किसान मानसून की मार झेल सकता है किन्तु विश्व व्यापार संगठन की नहीं। जब भारत में विश्व संगठन की सारी शर्तें लागू कर दी जाएंगी तब भारतीय कृषि के समक्ष समस्याएं आज के संदर्भ में और अधिक बढ़ जाएगी। आर्यात के लिए बाजार को खुला छोड़ दिए जाने से घरेलू मांग पिछड़ने लगेगी।

जब भारतीय कृषि के समक्ष आयी चुनौतियों के विषय में विचार किया जाता है तो ऐसा असंभव है कि उदारीकरण और विश्व व्यापार संगठन का जिक्र न किया जाये। उदारीकरण के कारण भारतीय कृषि व कृषक दोनों अभूतपूर्व संकट में हैं। इस प्रक्रिया में कृषि विकास दर बढ़ने की अपेक्षा घटने लगी है। नब्बे के दशक में कृषि उत्पादन की औसत वार्षिक दर 1.7 प्रतिशत रही और खाद्यान्न की औसत वार्षिक दर 1.7 प्रतिशत रही है, जो कि जनसंख्या वृद्धि दर से भी कम है। आजादी के बाद के 40–50 वर्षों में हमने खाद्यान्न के मामले में जो आत्मनिर्भरता अर्जित की है। वह धीरे–धीरे खत्म होने की स्थिति में है। क्योंकि आबादी जिस दर से बढ़ रही है वह वर्तमान में 103 करोड़ के लगभग है और खाद्यान्नों की बढ़ोत्तरी 1.7 प्रतिशत की दर से हो रही है। यही कारण है कि हम विश्व व्यापार संगठन के लागू होने की बाध्यता से, तीव्र गति से बढ़ती इस जनसंख्या से आत्मनिर्भर होने की अपेक्षा पराधीनता की ओर बढ़ते जाएंगे। यह स्थिति भारतीय कृषि पर मंडराते संकट के बादलों को स्पष्ट कर रही है। 1999–2000 में कृषि विकास की दर 0.3 प्रतिशत, 2000–01 में (–) 0.4 प्रतिशत एवं 2000–02 में 5.7 प्रतिशत रही हो 2002–03 में (–) 3.1 प्रतिशत रहने का अनुमान है। आर्थिक सुधारों के नाम पर राजकोषीय घाटा पाटने के लिए सरकारी व्यय करने के लिए उठाए गए विभिन्न उपायों में कृषि में सार्वजनिक निवेश में कमी की गयी। इसका सर्वाधिक प्रतिकूल प्रभाव छोटे तथा सीमान्त कृषकों पर पड़ा क्योंकि वे सीमित साधनों चलते अपने स्रोतों से न तो सिंचाई साधन विकसित करने की स्थिति में थे और न मंहगी होती जा रही कृषि आगतों का उपयोग ही कर सकते थे। वर्ष 1993–94 में कृषि क्षेत्र में 13,523 करोड़ रुपये का निवेश किया गया जिसमें से 4,467 करोड़ रुपये का सरकारी निवेश था जो कुल निवेश का 33 प्रतिशत था, लेकिन वर्ष 1998–99 में कृषि में किए गए 16,457 करोड़ रुपये के निवेश में से मात्र 23.6 प्रतिशत निवेश सरकारी क्षेत्र से था। वर्ष 1999–2000 एवं 2000–2001 में कृषि में सार्वजनिक निवेश में और भी कमी आयी है। ग्रामीण क्षेत्रों में आधारभूत ढांचे का आज भी अभाव है। यदि जनसंख्या वृद्धि की यही प्रवृत्ति रही तो देश को न केवल भयंकर खाद्यान्न संकट का सामना करना पड़ेगा बल्कि प्रतिव्यक्ति भूमि और पानी की उपलब्धता में आश्चर्यजनक कमी के साथ–साथ कृषि पर विविध प्रकार के जैविक व अजैविक दबाव भी बढ़ जाएंगे। एक अनुमान के अनुसार भारत में सन् 2005 तक प्रति व्यक्ति भूमि की उपलब्धता कम होते–होते 0.31 हैक्टेयर रह जाएगी जबकि 1950 में यह 3..89 हैक्टेयर थी। यह समस्याएं सामान्य नहीं हैं बल्कि गम्भीर हैं जिनका समाधान हमें स्वयं ही खोजना होगा। गांव में आधारभूत ढांचे के इस अभाव के कारण आज भी गांव में 30 प्रतिशत गांवों में 5 कि.मी. की परिधि में पक्की सड़कें नहीं हैं। 5 प्रतिशत गांवों में बीज भण्डार नहीं हैं तथा 80 प्रतिशत गांवों में कृषि औजारों की मरम्मत की सुविधा नहीं है। 25 प्रतिशत गांवों में गोदाम तथा 60 प्रतिशत में बाजार केंद्र नहीं हैं, इस स्थिति पर नजर डालते हुए विश्व व्यापार की शर्त लागू होने की स्थिति में क्या भारत अंतर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा में टिक पाएगा। आज यही एक यक्ष प्रश्न है।

कृषि की दृष्टि से 2002–03 सफलताओं और उपलब्धियों का वर्ष रहा है। पिछले कई बर्ष बाद कृषि में इतना आशातीत वृद्धि पायी गयी है। लगभग तीस–पैंतीस वर्ष पहले जो देश अनाज के मामले में आयात पर निर्भर था। आज वह विश्व की बड़ी कृषि शक्ति बनने की ओर अग्रसर है। तिलहन, कपास, गन्ना जैसी व्यापारिक फसलों के उत्पादन में भी अच्छी मात्रा में वृद्धि हुई है। यही नहीं दुग्ध उत्पादन में भी भारत ने विश्व में पहला स्थान बना लिया है। फल और सब्जी के उत्पादन में भारत का विश्व में दूसरा स्थान है। गेहूं उत्पादन में भारत विश्व में दूसरा सबसे बड़ा देश है। गेहूं के उत्पादन तथा प्रति हैक्टेयर उपज की वृद्धि से यह अमेरिका से भी आगे निकल गया है लेकिन अन्य देशों में कृषि की भूमि की उत्पादकता की तुलना भारत से करने पर पता चलता है कि यहां कृषि उत्पादकता का असर किस सीमा तक नीचा है।

भारत में गेहूं की उत्पादकता फ्रांस की तुलना में मात्र 39.0 प्रतिशत है। चीन की तुलना में भी भारत में गेंहूं की उत्पादकता मात्र 75 प्रतिशत (अर्थात लगभग तीन चौथाई) है, हालांकि चीन भी एक विकासशील देश है। जहां तक चावल का सम्बन्ध है, भारत में चावल की उत्पादकता चीन में तथा जापान में उत्पादकता भारत की चीन की उत्पादकता की तुलना में लगभग एक तिहाई है। पाकिस्तान

तालिका–2 : फसलों की आवश्यकता 2000

(कुछ देशों में प्रति हैक्टेयर उत्पादकता)

(किलोग्राम प्रति हैक्टेयर)

फसल	उत्पादकता	फसल	उत्पादकता
गेंहूं		कपास	
फ्रांस	7130	चीन	840
चीन	3730	अमेरिका	690
अमेरिका	2820	पाकिस्तान	530
भारत	2780	भारत	300
चावल (धान)		मूंगफली	
जापान	7040	चीन	3300
चीन	6700	अमेरिका	2800
इण्डोनेशिया	6230	अर्जेन्टाइना	2750
भारत	3010	भारत	860

की तुलना में भारत में कपास की उत्पादकता चीन की तुलना में 26 प्रतिशत तथा अर्जेन्टाइना एवं अर्जेन्टाइना एवं अमरीका की तुलना में 31 प्रतिशत है। बहुत–सी अन्य फसलों में भी इसी प्रकार की स्थिति पाई जाती है। भारत में कृषि उत्पादकता का यह निम्न स्तर इस बात का संकेत है कि उचित नीतियां अपनाकर उत्पादकता को और अधिक बढ़ाया जा सकता है। कृषि उत्पादन में वृद्धि के लिए शोध एवं अनुसंधान सुविधाओं का विकास अति आवश्यक है परन्तु भारत में कृषि अनुसंधान पर सकल घरेलू उत्पाद का केवल 0.3 प्रतिशत ही खर्च किया जाता है जो विकसित देशों के दो प्रतिशत की तुलना में काफी कम है। यहां ध्यान देने वाली बात यह है कि भारत में ही नहीं बल्कि शेष विश्व में हरित क्रांति को सफल बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले चावल की बॉनी प्रजाति आईआर–8, जो इन्टरनेशनल राइस रिसर्च इंस्टीट्यूट, फिलीपीन्स द्वारा 28 नवम्बर 1966 को जारी की गयी थी, के बाद से लेकर आज तक भारत में इससे अधिक उपज देने वाली प्रजाति नहीं खोजी जा सकी। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा वैश्विक स्तर पर खाद्य सुरक्षा को महत्व प्रदान करने की दृष्टि से वर्ष 2004 को अन्तर्राष्ट्रीय चावल वर्ष घोषित कर दिया गया है। आशा की जानी चाहिए कि भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद इस वर्ष चावल की ऐसी प्रजातियों की खोज करेगी जो उत्पादकता की दृष्टि से श्रेष्ठ हों।

दीर्घावधि तक फसल उत्पादकता बनाए रखने के लिए कृत्रिम उर्वरकों के साथ–साथ कार्बनिक पदार्थों की नियमित आपूर्ति अति आवश्यक है। खेती के लिए उपयुक्त मिट्टी में 5 प्रतिशत कार्बनिक पदार्थ अवश्य होने चाहिए, किन्तु हमारे देश में धीरे–धीरे निचली परतों में विद्यमान कार्बनिक पदार्थ वायु मिश्रण और सूक्ष्म जीवों की गतिविधियों के कारण कम होते जा रहे हैं। कार्बनिक पदार्थों को क्षति पहुंचाने में भूमि की संरचना में अवांछित परिवर्तन होते हैं, भूमि कटाव में वृद्धि होती है और फसल उत्पादकता में कमी आती है। अतः इस समस्या के समाधान हेतु सही खाद के उपयोग, फसल चक्र आदि को प्रोत्साहन दिए जाने की आवश्यकता है।

कृषि के लिए पर्याप्त मात्रा में और स्वीकार्य किस्म का जल उपलब्ध होने से विभिन्न फसलों की स्थाई उत्पादकता निर्धारित होती है। हमारे देश में प्राथमिक स्रोत के रूप में प्रतिवर्ष करीब 40 करोड़ हैक्टेयर मीटर जल वर्षा से प्राप्त होता है। देश की सभी प्रमुख नदियों को जोड़कर वर्षा के समुचित जल का उपयोग किया जा सकता है। कृषि वानिकी आधारित खेती प्रणाली में वृक्षा रोपण करके भी अतिरिक्त पानी का उपयोग किया जा सकता है।

समय के साथ–साथ देश में कृषि जोतों के औसत आकार में कमी आने के फलस्वरूप राष्ट्रीय स्तर पर छोटे और सीमान्त किसानों की संख्या निरंतर बढ़ती जा रही है। देश के लगभग 78 प्रतिशत किसान छोटे और सीमांत किसानों के रूप में न केवल अलाभकर जोतों पर निर्भर रहने को बाध्य हैं बल्कि अपनी ही जमीन पर खेती करके अपर्याप्त आय से एक मजदूर की भांति जीवनयापन करने को विवश हैं।

देश में भूक्षरण की समस्या भी निरन्तर गम्भीर होती जा रही है। भूमि में कटाव से उर्वरा शक्ति का ह्रास होता है तथा कुछ समय पश्चात वह भूमि कृषि योग्य नहीं रहती। वर्तमान समय में हमारे देश में 6 करोड़ 15 लाख 80 हजार हैक्टेयर कृषि भूमि क्षरणता के कारण बुरी तरह विकृत हो चुकी है जिसे रोकने के लिए हर संभव प्रयास जरूरी है। उल्लेखनीय है कि भूमि क्षरण के दुष्परिणाम भूमि की विकृतता तक ही सीमित नहीं रहते, बल्कि वे मनुष्यों और जीव–जंतुओं को भी अपनी चपेट में ले लेते हैं।

कृषि की इन विभिन्न चुनौतियों व समस्याओं को दूर करने के लिए, हमें अनेक ऐसे कदम उठाने होंगे जिनके द्वारा कृषि को आधुनिकता की ओर ले जाया जा सके और इन विभिन्न समस्याओं को सुलझाने में सहायक हो। कृषि का विविधीकरण करते हुए बागवानी, मात्सियिकी डेयरी, पशुपालन, मुर्गीपालन, मधुमक्खी पालन, रेशम कीट पालन आदि को बढ़ावा देकर ग्रामीण क्षेत्रों में व्याप्त अल्प–रोजगारी, बेरोजगारी और कुपोषण जैसी समस्याओं को समाप्त करने के प्रयास किये जाने चाहिये। कृषि वानिकी के माध्यम से सीमान्त भूमि के उपयोग को प्रोत्साहन देना चाहिए तथा जैविक उत्पादन पर भी बल देना चाहिए कृषि और ग्रामीण विकास कार्यक्रमों में गैर–सरकारी संगठनों की सहभागिता में वृद्धि की जानी चाहिए ताकि कृषि में संसाधन प्रवाह और पूंजी सृजन की गति बढ़ाई जा सके। इस प्रकार हम भारतीय कृषि को भी अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रतियोगी बना सकते हैं।

ध्यान देने वाली बात यह है कि भारत में खाद्यान्न उत्पादन औसत वार्षिक संवृद्धि दर 1.5 प्रतिशत से घटकर 1.2 प्रतिशत ही रह गयी है। यह दर जनसंख्या की औसत वार्षिक संवृद्धि पर (लगभग 2 प्रतिशत) से काफी कम है। इससे खाद्यान्न उपलब्धता के मामले में भारत योजनाकाल के प्रारंभ में उपलब्ध प्रति व्यक्ति औसत खाद्यान्न उपलब्धता के स्तर पर पहुंच गया है। गंभीर रूप से अल्पपोषित जनसंख्या में विगत पांच–छः वर्षों में ही 20 मिलियन से अधिक की वृद्धि हो गयी है और यह बढ़कर 240 मिलियन हो गयी है। इतने बड़े आकार की जनसंख्या को जीवित बने रहने लायक खाद्यान्न भी उपलब्ध न कराने वाला देश यदि गेहूं तथा चावल का निवल निर्यातक हो जाने के लिए अपनी पीठ खुद की थपथपाए तो उचित प्रतीत नहीं होता।

भारतीय कृषि का संबंध जहां 100 करोड़ के आकड़े को पार कर चुकी विशालकाय जनसंख्या को पर्याप्त मात्रा में खाद्यान्न उपलब्ध कराने से है, वह यह 66 करोड़ से अधिक देशवासियों की आय प्रमुख स्रोत है ऐसे में कृषि क्षेत्र की तनिक सी उपेक्षा भी नीतिकारों एवं देशवासियों के लिए भारी पड़ सकती है। भारतीय अर्थव्यवस्था में राष्ट्रीय आय में पहुंच का हिस्सा भले ही 24 प्रतिशत रह गया हो लेकिन जिस वर्ष प्रतिकूल मानसून से कृषि क्षेत्र की विकासदर घट जाती है उसी वर्ष सकल घरेलू उत्पाद की संवृद्धि दर को झटका लगता है। इसलिए आने वाले वर्षों में नीतिकारों को कृषि विकास पर अपेक्षाकृत अधिक ध्यान देना होगा। ❑

(लेखक द्वय डीएस डिग्री कालेज, अलीगढ़ और राजकीय महाविद्यालय, मांट, मथुरा में प्राचार्य हैं)

वैश्वीकरण के दौर में भारत

नरेंद्र सिंह, दीपा शर्मा

वैश्वीकरण का सामान्य अर्थ संपूर्ण विश्व को एक गांव के रूप में देखना है। ग्लोबल विलेज की अवधारणा कोई बहुत नई अवधारणा नहीं है। पहले भी शक्तिशाली देश अपने राज्यों, साम्राज्यों और आर्थिक गतिविधियों के विस्तार के लिए नए–नए तरीके उपयोग करते थे। मौजूदा वैश्वीकरण एक लंबी ऐतिहासिक प्रक्रिया का परिणाम है। वैश्वीकरण की प्रक्रिया भारतीय गांव को गहराई तक प्रभावित करती है। भारतीय गांव में उन वैश्वीय उत्पादों को स्थानीय उत्पादों में बदलते देखा जा सकता है जो अभी तक उनकी पहुंच से बहुत दूर होते थे। ग्रामीण समाज में भी फैलता उपभोक्तावाद वैश्वीकरण का सबसे मजबूत उदाहरण है। अतः वैश्वीकरण कोई रातोंरात आर्थिक एवं ऐतिहासिक प्रक्रिया का परिणाम नहीं है। भारत जैसे विकासशील देश इस भूमंडलीयकरण के अश्वमेधी घोड़े के सम्मुख खड़े हो गए और अपने आर्थिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक नियंत्रणों की बदलती धुरी को देखते रहे और अपने सामाजिक, आर्थिक गठन के लिए एंग्लो–अमेरिकन कार्पोरेट माडल को आदर्श रूप में स्वीकार कर लिया।

समाजशास्त्री एंथोनी गिडेंस के अनुसार– आज सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और आर्थिक संबंध ऐसे हैं जो राष्ट्रीय सीमाओं को लांघकर देशों के बीच की दशाओं और भाग्य को निर्धारित करते हैं। दुनिया की इस बढ़ती हुई आत्मनिर्भरता को ही विश्व व्यापीकरण या वैश्वीकरण कहते हैं।

भारत अपने स्वतंत्र एवं गणतंत्र की आधी सदी से अधिक देख चुका है। महंगाई, बेरोजगारी, गरीबी, भ्रष्टाचार बढ़ते गए और आम आदमी का जीवन दूभर होता चला गया। आज पूरी दूनिया में उदारीकरण, बाजार अर्थव्यवस्था, आर्थिक सुधार "ढांचागत समायोजन" भूमंडलीयकरण, वैश्वीकरण आदि नामों से एक नई विश्व व्यवस्था के निर्माण का एक सघन अभियान चल रहा है। इस सर्वाधिक चर्चित एवं चिंताजनक मुद्दे पर चोकस्की का कहना है कि–विश्व पूंजीवाद तो स्वयं में लोकतंत्र पर एक हमला है वास्तव में जिस शत्रु पर यह काम करता है "गरीबों के लिए बाजारों की मार, धनिकों के लिए छूटों एवं राहत की बौछार" नई बाजार व्यवस्था का मतलब है बहुमत जनता के विरुद्ध धनिक वर्ग की एकता।

वैश्वीकरण "वसुधैव कुटुम्बकम" के आदर्श पर चलने वाली प्रक्रिया है। अमेरीकी चिंतक रेनाल्ड नाइवर का कहना है कि –संपूर्ण विश्व एक है और विश्व के नागरिक एवं उनकी आवश्यकताएं एक हैं। अतः शिक्षा, साहित्य एवं संचार का एक ऐसा विश्व जनमत तैयार किया जाए और ऐसे वातावरण का निर्माण किया जाए जिससे विश्व ग्राम की परिकल्पना व्यावहारिक धरातल पर उतर सके तथा विश्व के प्रत्येक हिस्से का व्यक्ति अपने आपको किसी एक राज्य के स्थान पर समस्त विश्व का नागरिक समझे। वैश्वीकरण वर्तमान समय के व्यापारिक माहौल की ऐसी अवधारणा है जो पूरे विश्व को एक मंडल, एक केंद्र बनाने की बात करता है। आज भूमंडलीकरण प्रत्येक क्षेत्र का मुख्य विषय बन गया है, क्योंकि इसने समाज के प्रत्येक क्षेत्र को अत्यंत प्रभावित किया है। जैसे रोजगार के क्षेत्र में, कृषि क्षेत्र में गरीबी का प्रभाव, अर्थव्यवस्था पर प्रभाव, महिला वर्ग पर प्रभाव तथा समाज के सबसे महत्वपूर्ण क्षेत्र शिक्षा पर प्रभाव।

देश में शिक्षा के क्षेत्र में समानता होने के बजाए असमानता बढ़ रही है। आज महंगी शिक्षा पद्धति के कारण एक तरफ धनी तो दूसरी ओर निर्धन लोगों का देश बनकर रह गया है। अब शिक्षा प्राप्त करना गरीबों के वश की बात नहीं है। विश्वविद्यालय में सरकार सब्सिडी में कटौती कर रही है, जिससे विद्यालयों, महाविद्यालयों की फीस में कई गुना वृद्धि हो रही है। इसलिए विश्व की बहुसंख्या के लिए वैश्वीकरण ने अच्छे और लाभकारी परिणाम नहीं दिए बल्कि देशों के अंदर तथा देशों के बीच में आमदनी की असमानताएं भी पैदा कर दी हैं।

वर्तमान में वैश्वीकरण के दौर में शिक्षा का विस्तार शहरी क्षेत्रों में ग्रामीण क्षेत्रों की तुलना में अधिक व्यापक और तीव्र गति से हुआ है। शिक्षा के स्तर और गुणवत्ता के मध्य खाई बढ़ी है। जहां कान्वेंट स्कूलों में पढ़ने वाले बच्चे प्राथमिक स्तर पर ही आधुनिक सूचना और संचार माध्यमों द्वारा शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं, वहीं देश के अधिकतर बच्चे खुले आसमान के नीचे बिना कापी–पुस्तक के शिक्षा प्राप्त करने को बाध्य हैं। इस व्यवस्था ने शिक्षित युवा वर्ग को इतना प्रभावित किया है कि शैक्षिक बेरोजगारी की प्रवृत्ति बढ़ रही है। देशी उद्योगपति अपने उद्योगों को देश में कुछ प्रमुख तथा ख्याति प्राप्त विद्यालयों से ही रोजगार दे पाने में ही सक्षम होते हैं तथा असंख्य विद्यार्थी व्यावसायिक डिग्री लिए दिशाहीन होकर सड़कों पर घूम रहे हैं। यह सब शिक्षा पर भूमंडलीकरण का ही प्रभाव है।

एसोचैम की सितंबर 2001 में प्रकाशित रिपोर्ट में बताया गया था कि श्रम उत्पादकता की सूची में भारत का स्थान विश्व में 49वां एवं एशिया में 7वां है भारत में प्रतिव्यक्ति प्रति घंटे उत्पादकता दर मात्र 2.42 डालर है और कुल उत्पादकता में उसका योगदान 5.452 डालर का है जबकि सूची में प्रथम स्थान पाने वाले लक्जमबर्ग में प्रति व्यक्ति प्रति घंटा उत्पादकता दर 41.90 डालर है और उसका योगदान 73.90 डालर है। एशिया में मलेशिया की उत्पादकता भारत के कर्मचारी की तुलना में 25 प्रतिशत अधिक है इसलिए एसोचैम ने माना है कि आयोग का अनुबंधित श्रम एवं एक श्रम संघ की आवश्यकता वाला प्रावधान निश्चित ही श्रम उत्पादकता बढ़ाने में सहायक होगा।

समूची आबादी को अपनी चिंता के केंद्र में रखने का दावा करने वाली समाजवादी अर्थव्यवस्था के पतन के बाद बाजार

अर्थव्यवस्था एवं वैश्विक विकल्प के रूप में उभरकर आई है तथा शक्तिशाली कम्युनिस्ट नेतृत्व वाले चीन तक में वैश्वीकरण के झोकों से राष्ट्रीय सांस्कृतिक मूल्य हिलने लगे। अतः वैश्वीकरण की इस प्रक्रिया में राष्ट्रीय जीवन के सांस्कृतिक मूल्यों की जगह क्रमशः उन मूल्यों के स्थापित हो जाने का खतरा है, जो पश्चिमी दुनिया के नव–साम्राज्यवादी मंसूबों के पोषक हैं। इस प्रकार भूमंडलीकरण सिर्फ एक आर्थिक प्रक्रिया नहीं है बल्कि राष्ट्रीय अस्मिता एवं संस्कृति को गहरे से प्रभावित करने वाला भूचाल है।

भूमंडलीकरण के जरिए अमेरिकी समाज में पाई जाने वाली चरम पूंजीवादी विकृतियां एक जीवन मूल्य बनकर भारत में आ रही हैं, पर विडंबना यह है कि पूंजीवादी "राष्ट्रीय तकनीक उत्पादन एवं विकास" से तो भारत अपेक्षाकृत वंचित ही रहा, पर उससे उत्पन्न होने वाली बुराइयां भरपूर मात्रा में पहुंच गई हैं। भूमंडलीकरण के थमने के आसार अभी तो नजर नहीं आ रहे हैं। इसलिए इसके भौतिक सांस्कृतिक दुष्प्रभावों के प्रति सचेत होना अधिक जरूरी है ऐसी हालत में पश्चिमी उपभोक्तावादी साम्राज्यवादी मूल्यों के मुकाबले के संदर्भ में गांधी का चिंतन और अधिक प्रासंगिक हो गया है। आज गांधीजी की बातों ने वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में एक नया व्यापक आयाम ग्रहण कर लिया है जिस पर ध्यान देने की जरूरत है। भारत जैसे अनेक विकासशील देशों में बढ़ती जनसंख्या में लोग अपनी आजीविका और रोजगार पर भूमंडलीकरण के प्रतिकूल असर को अनुभव कर रहे हैं। किसानों पर अब विश्व बाजार के उतार–चढ़ाव का अधिक असर पड़ने लगा है तथा वैश्वीकरण की आंधी भारतीय समाज को गहराई से प्रभावित कर रही है। भारत विभिन्न धार्मिक सामाजिक समूहों और संस्कृतियों का देश है। वैश्वीकरण अनेक नई–नई संस्कृतियों का परिचय भारतीय समाज से करा रहा है। इस दृष्टि से भूमंडलीकरण की प्रक्रिया अनेकता में एकता को प्रदर्शित कर रही है। आज भारतीय बाजार तरह–तरह के परिधानों, खाद्यान्नों एवं उत्पादों से भरे पड़े हैं। नगरीय हो या ग्रामीण सभी तक उत्पाद पहुंच रहे हैं यह वैश्वीकरण का सकारात्मक पहलू है। वहीं दूसरी ओर भूमंडलीकरण ने भारतीय समाज को नकारात्मक रूप से भी प्रभावित किया है।

वैश्वीकरण के कारण अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर परिवर्तन बड़ी तेजी से हो रहा है। जल्दी–जल्दी नए संचार माध्यम एवं नई तकनीक सामने आ रहे हैं जिनके चलते उत्पाद, विचार, श्रम पद्धति एवं अन्य तौर–तरीके तेजी से पुराने पड़ते जा रहे हैं। भूमंडलीकरण की दुनिया विकासशील एवं पिछड़े देशों को आर्थिक रूप से अपने शिकंजे में लेती जा रही है। इसकी प्रवृत्ति अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय संगठनों को मजबूत करने की है। जिससे वे इन देशों में अधिक से अधिक हस्तक्षेप कर सकें। वैश्वीकरण की प्रक्रिया अर्थतंत्र के अलावा संचार राजनीति एवं संस्कृति को भी प्रभावित करती है। ये चीजें पूरी दुनिया में पहले से ज्यादा अंतः संबंधित हो गई हैं और नतीजे के तौर पर भूमंडलीकरण की संस्कृति बड़ी तेजी से हमारे चारों ओर अपने पांव फैला रही है।

1990 के दशक में विकास दर कभी भी 6 प्रतिशत से ज्यादा नहीं रही जबकि 1950, 1960 एवं 1970 के दशक में यह दर औसतन 3 प्रतिशत रही। 1990 के दशक में स्थायित्व एवं बेहतर स्थिति बनी हुई थी जो उदारीकरण, भूमंडलीकरण एवं आर्थिक सुधारों के नए प्रयोगों के लिए उचित दौर था क्योंकि उस समय हमारा विदेशी मुद्रा भंडार शून्य के इर्द–गिर्द था। स्थिति यह थी कि हमारी अर्थव्यवस्था की आयात करने की क्षमता दो सप्ताह तक ही थी लेकिन आज हमारे पास विदेशी मुद्रा भंडार करीब 120 मिलियन डालर का है।

नब्बे के दशक के बाद आर्थिक उदारीकरण का लाभ कुछ राज्यों ने उठाया किंतु अधिकांश कमजोर राज्य अभी तक इन सुधारों के साथ तालमेल नहीं बिठा पाए हैं। इसी कारण न तो यहां सही अर्थों में विकास हो रहा और न ही गरीबी कम हो रही। गरीबी के शिकंजे में फंसी देश की लगभग आधी जनसंख्या को गरीबी से मुक्त करने के लिए वर्तमान प्रयास प्राप्त नहीं है। अतः उक्त विश्लेषण से यदि निष्कर्ष निकाला जाता है कि उदारीकरण की उदारता बहुराष्ट्रीय कंपनियों एवं पूंजीनिवेशकों के लिए है और कड़े फैसले आम गरीब जनता के लिए हैं। इसलिए उदारीकरण के दर्शन को भारतीय परिप्रेक्ष्य में गरीबी एवं बेरोजगारी की समस्याओं के धरातल पर परखा जाना चाहिए। विश्व स्तर पर अपनाई जा रही उदारीकरण नीति का भारतीयकरण ही देश की समस्याओं का हल हो सकता है।

उदारीकरण, निजीकरण तथा भूमंडलीकरण का नतीजा यह मिला है कि दुनिया के 20 प्रतिशत लोगों के पास विश्व का 90 प्रतिशत धन है और 80 प्रतिशत लोगों के पास 10 प्रतिशत धन है। आर्थिक विनाशलीला को हम कब तक मूक दर्शक बने देखते रहेंगे। आर्थिक डिक्टेटरों ने सब कुछ अपने मनमाफिक निर्धारित कर लिया है और हमें उदारीकरण का झुनझुना थमा कर चुप कर दिया है। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि वर्षों का आर्थिक इतिहास इसका साक्षी है कि मुक्त बाजार व्यवस्था पर आधारित निजी मुनाफा प्रेरित तकनीकों ने हमारे आर्थिक, प्राकृतिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक तथा शैक्षणिक विकास के मुहानों को अवरुद्ध कर हमें उपभोक्तावादी मानव बनाकर छोड़ दिया है।

वैश्वीकरण के समर्थक हमें यकीन दिलाना चाहते हैं कि वैश्वीकरण की नीतियों के परिणामस्वरूप विकासशील देश अपनी स्पर्द्धा–शक्ति को मजबूत बना पाएंगे और उनमें त्वरित विकास की प्रक्रिया आरंभ हो जाएगी। भारत जैसे विकासशील देश के लिए उसके द्वारा नए बाजार में प्रवेश संभव हो सकेगा और नई एवं उच्च टेक्नोलाजी का प्रयोग अपने उत्पादन में किया जा सकेगा। अतः निष्कर्ष तौर पर कहा जा सकता है कि वैश्वीकरण बहुआयामी घटना है, जो विश्वग्राम की परिकल्पना पर आधारित है। विश्व के देशों का एक दूसरे के संपर्क में आना और विविध आयामों पर अंतः क्रिया तेज होना वैश्वीकरण का मुख्य लक्षण है। अतः वैश्वीकरण की तीव्र प्रक्रिया तेजी से परिवर्तनों के साथ सकारात्मक तथा नकारात्मक की मिलीजुली तस्वीर प्रस्तुत कर रही है।

वैश्वीकरण के औचित्य के बारे में अभी तक यही कहा जा सकता है कि यह विकासशील देशों के लिए एक अभिनव प्रयोग है और आगामी कुछ वर्षों तक इसे आजमाने के बाद ही निर्णायक रूप से यह कहा जा सकेगा कि वैश्वीकरण की प्रक्रिया को जारी रखा जाए या छोड़ दिया जाए। ❑

(लेखक द्वय चौधरी चरणसिंह विश्वविद्यालय, मेरठ के राजनीति विज्ञान से संबद्ध हैं)

ग्रामीण विकास में प्रौद्योगिकी की भूमिका

जनक सिंह मीणा

भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति से पहले ही विज्ञान एवं टेक्नोलाजी की सुदृढ़ परंपरा विकसित हो चुकी थी। वर्तमान में राष्ट्र के विकास में गांवों को विकास की मूलभूत धारा से जोड़ने की दिशा में प्रौद्योगिकी की भूमिका की शुरुआत की जा रही है। ग्रामीण विकास के क्षेत्र में प्रौद्योगिकी वरदान सिद्ध हो रही है।

गांवों के विकास में प्रौद्योगिकी

सर्वांगीण ग्रामीण विकास के लिए एक ओर ऋण रोजगार तथा प्रशिक्षण की आवश्यकता है वहीं दूसरी ओर सस्ती प्रौद्योगिकी का प्रसार भी अनिवार्य है। नई–नई तकनीकों का विकास करने मात्र से ही नहीं, बल्कि जरूरी यह है कि ग्रामोपयोगी प्रौद्योगिकी से जुड़ी जानकारी को ग्रामवासियों तक पहुंचाया जाए जिससे ग्रामीण उसको उपयोग में ले सकें और उत्पादन बढ़ाकर अपनी आमदनी में वृद्धि कर सकें और अपना जीवन स्तर ऊंचा उठा सकें। जन संचार माध्यम इस दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाकर ग्रामीण विकास की गति को तेज कर सकते हैं।

ग्रामीण प्रौद्योगिकी और उसका प्रसार करने के संबंध में काफी कार्य हमारे देश में हुआ है फिर भी अभी बहुत से क्षेत्र ऐसे हैं जिनमें वहां की आवश्यकताओं के अनुरूप प्रौद्योगिकी नहीं पहुंच पाई है। गरीबी और अशिक्षा भी इस दिशा में बहुत बड़ी बाधा सिद्ध हुई है। प्रौद्योगिकी का रुख विशेष रूप से प्रायः शहरी जीवन की ओर केंद्रित रहा है जबकि हमारे देश की अधिसंख्य आबादी ग्रामीण क्षेत्रों में रहती है। ग्रामीण जन–जीवन की कठिनाइयां अलग प्रकार की हैं। अतः प्रौद्योगिकी का समुचित प्रसार गांवों की ओर होना अनिवार्य है ताकि समय और श्रम की बचत तथा उत्पादन की वृद्धि के साथ–साथ जीवन स्तर भी बेहतर बन सके।

समग्र ग्रामीण विकास के लिए नई प्रौद्योगिकी को बढ़ावा देने के लिए हमारे देश में यह कार्य एक सरकारी संस्था लोक कार्यक्रम एवं ग्रामीण प्रौद्योगिकी विकास परिषद (इसे कापार्ट भी कहते हैं।) कर रही है। इस संस्था का लक्ष्य ग्रामीण क्षेत्रों के लिए उपयुक्त प्रौद्योगिकी के विकास को प्रेरित करना है। सन् 1986 से कपार्ट इस तरह की परियोजनाएं ग्रामीण क्षेत्रों में चलाने के लिए सहायता प्रदान करती है। दस लाख रुपये तक के प्रस्तावों को मंजूर करने हेतु जयपुर, लखनऊ, अहमदाबाद, भुवनेश्वर, पटना, चंडीगढ़, हैदराबाद, गुवाहटी और धारवाड़ में नौ क्षेत्रीय कार्यालय खोले गए हैं।

साइबर कैफे–सामुदायिक उपयोगिता

वर्तमान में चारों ओर इंटरनेट के चर्चे हैं। एक नए सूचना युग का आगमन हुआ है। सूचना तकनीकी के क्षेत्र में हो रहे बदलावों का असर हमारे दैनिक जीवन पर भी पड़ने लगा है। सूचना तकनीकी और कंप्यूटर का उपयोग हर क्षेत्र में बढ़ रहा है। इंटरनेट के जरिए सूचना तंत्र को आम आदमी के पास लाने के लिए प्रयोग हो रहा है– 'साइबर कैफे' के रूप में। इसे 'साइबर कैफे' या 'साइबर ढाबा' या फिर 'इंटरनेट सूचना बूथ' कह सकते हैं।

किसान का सलाहकार

गांवों में खुलने वाले साइबर कैफे ने आज ग्रामीण जीवन को भी बदलकर रख दिया है। अब इंटरनेट से जुड़कर किसान गेहूं, टमाटर या प्याज का दूर या पास की मंडी के ताजे भाव जान सकता है।

साइबर कैफे के कारण अब कोई बिचौलिया किसी किसान को धोखा देकर उसे अपनी उपज निराशाजनक भावों पर बिकवाने में सफल नहीं हो पाएगा। आसपास के बाजारों और बड़े शहरों की मंडियों के भाव एक मिनट में साइबर कैफे द्वारा पता किए जा सकते हैं। खाद, बीज और कीटनाशकों का आर्डर सीधे कंप्यूटर से दिया जा सकता है। इसी तरह पंपसेटों, कृषि उपकरणों तथा सर्विस इंजीनियरों की सेवाएं प्राप्त करना भी संभव हो गया है।

प्रौद्योगिकी हस्तांतरण और जनसहभागिता

प्रकृति के संतुलन को तोड़कर किया गया विकास कभी भी लंबे समय तक नहीं चल सकता तथा ऐसे विकास के लिए किए गए प्रयासों से विकास में विकृति तथा अन्य परिवर्तन आ सकते हैं जो घातक हो सकते हैं। हरित क्रांति द्वारा पंजाब और हरियाणा की सफलता को पूरे देश में फैलाने की कोशिश की गई परंतु पंजाब–हरियाणा की पारिस्थितिकी और बाकी देश की पारिस्थितिकी में अंतर है। अतः पर्यावरणीय कारक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका प्रदान करते हैं।

भू–जल एक सामूहिक संसाधन है जिस पर गांव में सार्वजनिक नियंत्रण की आवश्यकता है। ट्यूबवेलों की गहराई, उनके बीच की दूरी और उन पर नियंत्रण रखने की जरूरत है। इस तरह का नियंत्रण केवल कानून बनाने से संभव नहीं है। इसके लिए तकनीकी हस्तांतरण की प्रक्रिया में स्थानीय लोगों की सक्रिय भागीदारी की आवश्यकता है।

वैज्ञानिकों के काम को लोगों तक पहुंचाना, लोगों के ज्ञान और उनकी आकांक्षाओं से जोड़ने का काम उन लोक संगठनों का है जो गांव में बसे हैं। एक तरफ उन्हें वैज्ञानिकों से संवाद स्थापित करना है ताकि जमीन की असली समस्याओं का हल वैज्ञानिक निकाल सकें और दूसरी ओर उन्हें लोगों के बीच रह कर उनकी परेशानियों को समझना और उन्हें खुद दूर कर पाने की क्षमता पैदा करना है।

जनसहभागिता पर आधारित तकनीकी हस्तांतरण के इस आदर्श का एक उदाहरण समाज प्रगति सहयोग लोक संगठन द्वारा संचालित बाबा आमटे लोक सशक्तिकरण केंद्र है। बाबा आमटे प्रशिक्षण के महत्व को ग्रामीण विकास के रूप में निम्न शब्दों में व्यक्त किया

है– "जब प्रशिक्षणार्थी ही प्रशिक्षक बन जाएगा तब हाथ बोल उठेंगे। ऐसे हाथ जो भवनों या कारखानों का ही नहीं, एक देश, एक नई संस्कृति, संपूर्ण मानवता का निर्माण भी करेंगे।"

ग्रामीण विकास – जैव टेक्नोलाजी

जैव टेक्नोलाजी के करिश्मे वैज्ञानिकों की देन हैं। जैव इयत्ताओं (एंटिटीज) के जेनेटिक पदार्थ में हेरफेर करने संबंधी टेक्नोलाजी कही जाती है। इसके इस्तेमाल से वनस्पतियों एवं प्राणी के गुणों में बदलाव हो जाते हैं।

जैव टेक्नोलाजी के व्यापक प्रसार के लिए विभिन्न पायलट कार्यक्रम देश में शुरू हुए हैं। ये मूलतः जैव टेक्नोलाजी की शक्ति के रूप में भारत की अपनी भागीदारी की तैयारी के प्रतीक हैं। जैव टेक्नोलाजी विभाग द्वारा देश के विभिन्न राज्यों में 'कटिंग एज' जैव टेक्नोलाजी विभाग की 102 परियोजनाएं सामान्य ग्रामीणों के बीच चलाई जा रही हैं। इनसे 52,000 परिवारों को सीधे रोजगार और आय बढ़ाने का अवसर भी मिला है।

अभी देश का एकमात्र जैव टेक्नोलाजी पार्क चेन्नई में स्थापित किया गया है जो केवल महिलाओं के लिए है। इसकी सफलता ने विभिन्न राज्यों का ध्यान आकर्षित किया है और उनकी मांग पर दसवीं पंचवर्षीय योजना में कम से कम 10 प्रतिशत से अधिक जैव टेक्नोलाजी पार्क बनाने की योजना है।

सूचना प्रौद्योगिकी की गांवों तक पहुंच

आजादी के बाद से प्रौद्योगिकी द्वारा गांवों के कायापलट की मिसाल इस देश में आधुनिक सिंचाई प्रणाली की स्थापना, रासायनिक खाद का उत्पादन एवं प्रयोग और हरित क्रांति है।

भाखड़ा–नांगल बांध परियोजना से देश में पहली बार बड़े पैमाने पर सिंचाई की आधुनिक प्रौद्योगिकी का जनोपयोग सामने आया और इसके बाद कई बांध परियोजनाओं का विकास हुआ। इसके साथ ही रासायनिक खाद बनाने के कारखानों, बिजली उत्पादन और उपकरण बनाने के कारखानों से भी देश में कृषि एवं औद्योगिक क्रांति की शुरुआत में आधुनिक प्रौद्योगिकी से मदद मिली।

आधुनिक प्रौद्योगिकी की प्रासंगिकता के कारण ही सूचना प्रौद्योगिकी को जन–जन तक पहुंचाने के लिए भारत में 'मीडिया लैब एशिया' की स्थापना के कदम उठाए गए हैं। भारत में इसके लिए गांवों, शिक्षा संस्थानों और उद्यमियों तीनों के बीच समन्वय बनाया जाएगा।

गांवों तक प्रौद्योगिकी पहुंचाने में सबसे बड़ी बाधा बिजली की कमी है, क्योंकि देश के जिन तीन चौथाई गांवों में बिजली पहुंच चुकी है, वहां भी नियमित सप्लाई के लिए बिजली का उत्पादन भरपूर नहीं है। लेकिन इसकी भरपाई स्थानीय स्तर पर बैटरी अथवा जेनरेटरों द्वारा की जा सकती है। सूचना प्रौद्योगिकी के ग्रामीण स्तर तक पहुंचने में बिजली के बाद सबसे बड़ी बाधा टेलीफोन नेटवर्क की कमी है। सच तो यह है कि आज भी फोन लाइनें गांवों तक पहुंच ही नहीं पाई हैं और पहुंच भी गई हैं तो उनका रख–रखाव सही नहीं है।

सूचना प्रौद्योगिकी के आधुनिक उपकरणों को गांव पंचायतों तक उपलब्ध कराना सरकार का ध्येय होना चाहिए साथ ही इसमें जनसहभागिता की भी आवश्यकता है। गांव के आम लोगों तक आधुनिक सूचना उपकरणों की पहुंच से ग्रामीण जनता में महत्वपूर्ण विकास होगा। ग्राम पंचायतों में टेलीफोन, फैक्स, टेलीग्राम तथा कंप्यूटर आदि सुविधाएं उपलब्ध होनी चाहिए जिससे आम जनता की पहुंच इन तक बन सके। तभी सूचना प्रौद्योगिकी यथार्थ में ग्रामीण विकास में सहायक होगी।

कंप्यूटरीकरण

सूचना प्रौद्योगिकी विभाग राज्य सरकार के विभागों को सुव्यवस्थित एवं योजनाबद्ध तरीके से कंप्यूटरीकृत करने के उद्देश्य से एक प्रमुख संस्था के रूप में कार्य कर रहा है। विभाग अपने मुख्य कार्यों के साथ ही कंप्यूटरीकरण से संबंधित नीतियां तैयार करने, जागरूकता उत्पन्न करने एवं राज्य सरकार के विभागों में परामर्श प्रदान करने का भी कार्य कर रहा है।

सरकारी क्षेत्र में सूचना एवं प्रौद्योगिकी के बढ़ते उपयोग को देखते हुए 1989 में राज्य सरकार ने राजस्थान स्टेट एजेंसी फार कंप्यूटर सर्विसेज 'राजकाम्प' नाम से एक परामर्शदायी एवं परियोजना क्रियान्वयन अभिकरण की स्थापना की।

कंप्यूटरीकरण से संबंधित आरंभ की गई महत्वपूर्ण परियोजनाएं निम्न हैं :–

- **राज्य की सूचना प्रौद्योगिकी नीति :** सूचना प्रौद्योगिकी विभाग द्वारा राज्य के लिए पांच वर्षों के लिए तैयार की गई सूचना प्रौद्योगिकी नीति का 14 अप्रैल, 2000 को शुभारंभ किया गया। यह, अब क्रियान्वयन के दौर में है।
- **राजस्विफ्ट–राज्य सरकार का इंट्रानेट :** राजस्विफ्ट एक वेबसाइट है, जिसके द्वारा मुख्यमंत्री, मुख्यमंत्री सचिवालय के वरिष्ठ अधिकारीगण, सांसद एवं जिला कलेक्टर सूचना प्राप्त करने हेतु, सूचना प्रौद्योगिकी सचिवालय में स्थित वेब सरवर से जुड़े हैं। इस वर्ष इसमें राहत कार्यों की ताजातरीन सूचना हेतु एक नई कार्य प्रणाली को जोड़ा गया।
- **राजनिधि एवं सूचना क्योस्क :** राज्य के प्राशासनिक तंत्र एवं सामान्य जनता को सरकारी सूचनाएं उपलब्ध कराने हेतु पिछले वर्ष राजनिधि एक समंक भंडार परियोजना विकसित की गई। इसमें इन सूचनाओं को अनवरत आदिनांक एवं प्रमाणीकरण किया जाना अत्यंत आवश्यक है। पहला राजनिधि सूचना कियोस्क नायला गांव में शुरू किया गया।

नए ग्रामीण ऊर्जा स्रोतों की आवश्यकता

आज ऊर्जा मानव जीवन के विकास का पर्याय बन गई है। केवल भौतिक सुख–सुविधा ही नहीं बल्कि अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति भी ऊर्जा से ही संभव है। आज किसी भी तरह के विकास का आकलन ऊर्जा विकास और उसके उपभोग से किया जाने लगा है तो दूसरी तरफ कृषि संबंधी विकास में भी तेजी आ रही है और देश प्रगति की ओर अग्रसर हो रहा है।

आजादी के 57 वर्षों में भारत में ऊर्जा के उत्पादन और उपभोग में काफी वृद्धि हुई है, फिर भी ऊर्जा के क्षेत्र में विशेषकर ग्रामीण भविष्य चुनौतियों से भरा पड़ा है। आज आवश्यकता है ऐसे नए स्रोतों की जो सस्ते और सुलभ हों।

ग्रामीण विकास के विविध आयामों में से ऊर्जा भी एक आयाम है जिसके विकास के बिना ग्रामीण विकास की कल्पना नहीं की जा सकती। भारत में ग्रामीण क्षेत्र के संदर्भ में वैकल्पिक ऊर्जा स्रोतों यथा सौर ऊर्जा, भूगर्भीय ऊर्जा, जल ऊर्जा, तेल जैवीय ऊर्जा, वायु ऊर्जा, पशुबल इत्यादि का विशेष महत्व है।

यदि सौर ऊर्जा को विद्युत ऊर्जा में परिवर्तित

करने और संग्रहित करने वाले सेलों को विकसित कर सस्ता तथा सुलभ बनाया जाए तो ग्रामीण विद्युतीकरण की दिशा में काफी प्रगति हो सकती है।

गैर–परंपरागत ऊर्जा स्रोतों का विकास

राजस्थान में ऊर्जा की कमी को दूर करने के लिए गैर–परंपरागत ऊर्जा स्रोतों के विकास पर ध्यान देना चाहिए बायो गैस, सौर–ऊर्जा तथा निर्धूम चूल्हे का प्रचार एवं विकास करके ऊर्जा की पूर्ति में वृद्धि की जा सकती है।

राज्य में गैर–परंपरागत ऊर्जा स्रोतों का विकास करने हेतु 1985 में राजस्थान ऊर्जा विकास एजेंसी की स्थापना की गई थी। यह एजेंसी कई स्थानों पर सौर ऊर्जा, वायु ऊर्जा तथा बायो गैस का विकास करने में महत्वपूर्ण कार्य कर रही है।

1985 में स्थापित राजस्थान ऊर्जा विकास अभिकरण (रेडा) का प्रमुख उद्देश्य राज्य में गैर–परंपरागत ऊर्जा स्रोतों का विकास करना है। (रेडा) गैर–परंपरागत ऊर्जा क्षेत्र एवं वर्तमान में उपलब्ध ऊर्जा स्रोतों में तीव्र गति से हो रही कमी तथा पारंपरिक ऊर्जा स्रोतों से होने वाले प्रदूषण से उत्पन्न होने वाली समस्याओं के संबंध में उपयोगी जानकारी कराने हेतु नोडल संस्था के रूप में कार्य करती है।

पवन ऊर्जा – रेडा ने अनेक पवन ऊर्जा प्रदर्शन परियोजनाएं स्थापित की हैं। प्रथम पवन ऊर्जा परियोजना जैसलमेर में 1999 में स्थापित की गई। दूसरी पवन ऊर्जा परियोजना चित्तौड़गढ़ जिले के देवगढ़ गांव में की गई। तीसरी परियोजना फलौदी में स्थापित की गई है।

रेडा राज्य में सोलर कुकर कार्यक्रम का क्रियान्वयन कर रही है। घरेलू एवं पथ प्रकाश आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु ग्रामीण विद्युतीकरण की व्यवस्था के अंतर्गत वर्ष 1995–96 से रेडा व्यवस्था पर आधारित सोलर फोटोवोल्टाइक उपलब्ध करा रहा है।

राजस्थान सरकार ने 26 जनवरी 2001 को राज्य की जनता को सूचना का अधिकार प्रदान करके पारदर्शी एवं जवाबदेह प्रशासन की दशा में एक महत्वपूर्ण कदम रखा है। सूचना के अधिकार का तात्पर्य है "राज्य या लोक निकायों के अभिलेखों की प्रमाणित प्रतिलिपियां प्राप्त कर राज्य एवं लोक निकायों के कार्यकलापों से संबंधित सूचना तक पहुंचना।"

यह अधिकार प्रत्येक नागरिक को प्राप्त है जो राज्य सरकार के किसी भी कार्यालय, इकाई या विभाग से सूचना पाना चाहता है। सूचना–प्राप्ति के इच्छुक व्यक्ति को संबंधित अधिकारी के समक्ष आवेदन करना होगा तथा निर्धारित शुल्क अदा करने पर उसे 30 दिन के अंदर सूचना की नकल या फोटोस्टेट प्रति उपलब्ध करा दी जाएगी।

राजस्थान सरकार का प्रौद्योगिकी को गांवों तक पहुंचाने का प्रयास जारी है। इस दिशा में सरकार संचार सुविधाएं, कंप्यूटर सेवाएं तथा आधुनिक तकनीकीयुक्त खाद, बीज एवं यंत्र उपलब्ध करा रही है। राजस्थान सचिवालय कंप्यूटरीकृत है। अब कंप्यूटर के माध्यम से जिले की स्थिति तथा मुख्यमंत्री एवं सचिवालय से कुछ क्षणों में ही संपर्क किया जा सकता है। इससे प्रशासन में पारदर्शिता आएगी।

टेलीफोन सेवाएं, कंप्यूटर (इंटरनेट सेवाएं) जब तक ग्राम पंचायतों तक नहीं पहुंच पाएंगी तब तक ग्रामीण प्रत्यक्ष रूप से प्रौद्योगिकी से नहीं जुड़ पाएंगे। अतः ग्रामीण जनता को प्रौद्योगिकी से जोड़कर विकास की ओर अग्रसर होना आवश्यक है। ग्रामीणों को उनके उपयोग से संबंधित जानकारी उपलब्ध कराने में आसानी, प्रशासन में पारदर्शिता तथा जन सहभागिता बढ़ाने के लिए आधुनिक प्रौद्योगिकी जनसाधारण तक पहुंचाना आवश्यक है। ग्रामीण जनता से संबंधित सभी कार्यालयों, इकाईयों एवं विभागों को आधुनिक प्रौद्योगिकी से जोड़कर कार्यों में शीघ्रता, सरलता एवं लागत में कमी को प्राथमिकता देकर ग्रामीण जनता को लाभान्वित करने को मुख्य लक्ष्य बनाया जाना चाहिए।

गांव की जनता अशिक्षित, भोली एवं गरीब है, आज पटवारी से कोई काम करवाना हो तो छोटे से काम से लिए ही वह बड़ी रिश्वत ले लेता है। ग्रामीण जनता में जागरूकता नहीं होने के कारण वह आसानी से पटवारी को रिश्वत देकर काम करवाने की कोशिश करती है। इसी प्रकार सरपंच, विकास अधिकारी, तहसीलों में कई अधिकारी ग्रामीण जनता के भोलेपन का नाजायज फायदा उठा कर उनका शोषण करते हैं। इस हेतु तहसीलों, पंचायत समितियों एवं ग्राम पंचायतों में कंप्यूटर सूचना केंद्र हों जिससे ग्रामीण संबंधित सूचना या किसी कागज की प्रतिलिपि बिना विलंब के बहुत ही सस्ते दामों में प्राप्त कर सकें। जहां तक हो सके ग्रामीण जनता विशेषकर किसानों से संबंधित कार्यों में पारदर्शिता, ईमानदारी के लिए हर संभव प्रयास करने चाहिए।

किसानों को खाद, बीज, यंत्र तथा कीटनाशकों आदि से संबंधित जानकारी, फसलों के लिए आधुनिक उपाय, अनाजों के विक्रय हेतु मंडियों के ताजा भाव आदि कंप्यूटर द्वारा आसानी से उपलब्ध कराए जा सकते हैं।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि प्रौद्योगिकी का ग्रामीण विकास में महत्वपूर्ण योगदान है। इसको आम जनता तक एवं गांव–गांव में पहुंचाने के लिए प्रयास शुरू हो गए हैं। अब शीघ्र ही ग्रामीण जनता आधुनिक प्रौद्योगिकी से प्रत्यक्ष रूप से लाभान्वित होने लगेगी। इस दिशा में सरकार एवं स्वैच्छिक संगठनों को आगे आने की आवश्यकता है।

जब तक प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल आम ग्रामीण जनता नहीं करेगी तब तक विकास अधूरा है। अतः आधुनिक प्रौद्योगिकी द्वारा ग्रामीण जनता को उठाना ही असली विकास होगा।

ग्रामीण विकास में आधुनिक संचार प्रणाली की भूमिका

भारत जैसे विकासशील देश के लिए आधुनिक संचार प्रणाली महत्वपूर्ण निविष्टियों में से एक है जो ग्रामीण समाज के सामाजिक–आर्थिक रूपांतरण की गति निर्धारित करेगी।

सरकार ने ग्रामीण विकास के लिए अनेक कार्यक्रम प्रारंभ किए हुए है। इन कार्यक्रमों का लाभ ग्रामीण समुदाय तभी प्राप्त कर सकता है जब उसे विकास योजनाओं और कार्यक्रमों की संपूर्ण जानकारी हो। यह जानकारी केवल आधुनिक संचार प्रणाली के माध्यम से ही गावं–गांव तक पहुंचाई जा सकती है। वर्तमान प्रगतिशील युग में विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी से प्राप्त ज्ञान से किसान को तब तक लाभ नहीं होगा जब तक कि इस ज्ञान को संचार के माध्यम से उस तक नहीं पहुंचाया जाए। रेडियो, दूरदर्शन एवं इंटरनेट के द्वारा इन सूचनाओं का अभाव स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। ग्रामीण विकास के अनेक कार्यक्रमों की ग्रामवासियों को खबर तक नहीं होती इसमें ग्रामीण जनता की अपेक्षा व अज्ञानता के अतिरिक्त आधुनिक संचार प्रणाली का अभाव भी है। ❑

(लेखक राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर के लोक प्रशासन विभाग से संबद्ध हैं)

उदारीकरण का कृषि और ग्रामीण विकास पर प्रभाव

ऋचा मित्तल

उदारीकरण वह प्रक्रिया है जिसके अंतर्गत नियन्त्रणों और प्रतिबन्धों में ढील देकर उदार नीतियों का पालन किया जाता है। आर्थिक उदारीकरण वह प्रणाली है जिसमें कठोरताएं न हों, विभेदीकृत अफसरशाही नियंत्रण न हो और प्रक्रिया संबंधी अनावश्यक विलम्ब न हो। वर्तमान में घरेलू अर्थव्यवस्था के उदारीकरण के साथ ही विश्व स्तर पर भी विभिन्न अवरोधों को समाप्त किया जा रहा है।

विश्व स्तर पर उदारीकरण का प्रारंभ 1947 में व्यापार तथा प्रशुल्क पर सामान्य समझौता (गेट) के साथ ही हो गया था परन्तु तब गेट की परिधि में केवल वस्तु व्यापार को ही रखा गया था तथा कृषि को गेट से बाहर रखा हुआ गया था। उस समय विकसित देश अपने किसानों को संरक्षण और अपने को खाद्यान्न के क्षेत्र में आत्मनिर्भर बनाना चाहते थे। और कृषि में मुक्त व्यापार के पक्षधर नहीं थे। परन्तु 80 के दशक की मंदी के पश्चात विकसित देशों तथा कुछ विकासशील देशों ने अनुभव किया कि कृषि में उदारीकृत व्यापार से उन्हें लाभ हो सकता है। उनका तर्क था कि उन्नत बीजों तथा नवीन कृषि तकनीक का विकास तो विकसित देश करते हैं तथा उसका लाभ विकासशील देश बिना किसी प्रयास के उठा लेते हैं। अतः उन्होंने पेटेंट जैसे किसी कानून की वकालत की ताकि जो भी नई खोज का आविष्कार है उसे उसकी मेहनत के अनुसार लाभ प्राप्त हो सके।

उदारीकरण के कृषि पर प्रभावों की चर्चा करने में "कृषि पर समझौते" तथा "ट्रिप्स" का विशेष महत्व है।

कृषि पर समझौता

कृषि समझौता के अंतर्गत निम्न प्रावधान किए गए :–

- विकसित तथा विकासशील देश अपने कुल कृषि उत्पाद का अधिकतम 5 प्रतिशत तथा 10 प्रतिशत (क्रमशः) कुल समग्र तथा सहायता (एएमएस) के रूप में दे सकते हैं।
- विकसित तथा विकासशील देशों के लिए अति आवश्यक है कि वे कृषि उत्पादों पर प्रशुल्कों को क्रमशः 36 प्रतिशत व 24 प्रतिशत कम करें तथा सभी देशों के लिए आवश्यक है कि वे अपने बाजारों में विदेशी कृषि उत्पादों के लिए कम से कम 3 प्रतिशत की बाजार प्रवेश सुविधा प्रदान करें जो 6 वर्ष बाद बढ़कर 5 प्रतिशत हो जायेगी।
- विकसित देशों के लिए आवश्यक है कि वे 6 वर्ष के कार्यन्वयन काल में प्रत्यक्ष निर्यात सब्सिडियों के मूल्य को कम करके 1986–90 की आधार अवधि सतर के 36 प्रतिशत तक करें तथा निर्यात की मात्रा को 21 प्रतिशत तक कम करें। विकासशील देशों के लिए यह कटौतियां 10 वर्ष के काल में क्रमशः 24 प्रतिशत व 14 प्रतिशत होगी।

ट्रिप्स

ट्रिप्स के अंतर्गत सात तरह की बौद्धिक संपदा आती है। उदाहरणार्थ कापीराइट, ट्रेडमार्क, औद्योगिक, डिजाइन, पेटेंट आदि।

पेटेंट एक प्रकार का ऐसा एकाधिकारी अधिकार है जो किसी देश की सरकार अन्वेषक को एक निश्चित अवधि के लिए प्रदान करती है। यदि अन्वेषक की खोज का प्रयोग किसी अन्य के द्वारा किया जाता है तो उसे रायल्टी लेने का अधिकार है। वितरण तथा उत्पादन के समस्त अधिकार पेटेंट करने वाले को मिल जाते हैं। कृषि में नये बीजों की खोज के संबंध में इस समझौते की प्रमुख भूमिका है। भारत में उदारीकृत तथा वैश्वीकरण का आगमन 1990–91 के गंभीर आर्थिक संकट के पश्चात 1991 में घोषित "नवीन आर्थिक" नीति के साथ हुआ परंतु कृषि में उदारीकरण "कृषि पर समझौते" तथा विश्व व्यापार संगठन के पश्चात हुआ। भारतीय अर्थव्यवस्था तथा ग्रामीण विकास का मुख्य आधार स्तंभ कृषि ही है तथा कृषि में एकदम से आये इन परिवर्तनों का अनेक लोगों द्वारा विरोध किया गया जबकि दूसरी विचारधारा उदारीकरण से उपजी हुई संभावनाओं के यथासंभव दोहन द्वारा इसका अधिकतम लाभ उठाने के पक्ष में थी। सर्वप्रथम उदारीकरण के कारण भारतीय कृषि तथा तदानुसार ग्रामीण क्षेत्रों को होने वाले लाभों की चर्चा करना उपयुक्त है।

लाभ

वर्तमान में कृषि उत्पादकों के व्यापार में लगे हुए अनेक प्रकार के प्रतिबंधों जैसे प्रशुल्कों को हटाया जा रहा है। जिससे भारत उन वस्तुओं के निर्यात में बढ़ोत्तरी कर सकता है जिसमें उसे तुलनात्मक लाभ है। पिछले 4–5 वर्षों में समुद्री उत्पाद, पुष्पोत्पादन तथा डेयरी उत्पाद के निर्यात में बढ़ोत्तरी हुई है जबकि 1995–96 से पहले इन वस्तुओं का निर्यात बहुत कम था। इसी प्रकार बागवानी फसलों के उत्पादन में भी भारत अपेक्षाकृत बेहतर लागत–उत्पाद संबंध प्राप्त कर सकता है। परंपरागत कृषि निर्यात जैसे काजू, बासमती चावल, मसालों के निर्यात में भी वृद्धि हुई है।

इस प्रकार नई विश्व अर्थव्यवस्था में भारत कृषि क्षेत्र से अधिक विदेशी मुद्रा प्राप्त कर सकता है परन्तु साथ ही आवश्यक है कि इस मुद्रा का प्रयोग कृषि व ग्रामों के विकास हेतु किया जाए।

भारत में घरेलू सहायता तथा निर्यात सब्सिडी डब्ल्यूटीओ के मानकों से कम ही है। अतः भारत पर इन समझौतों का प्रभाव नहीं पड़ेगा परंतु विकसित देशों में सब्सिडी का स्तर बहुत ऊंचा है। भारत में एक वर्ष में

जितना उत्पादन है, उतनी सब्सिडी अमेरिका में एक वर्ष में किसानों को दी जाती है। भारत में खाद्य सब्सिडी प्रदान की जाती है जिसका उद्देश्य खाद्यान्न के मूल्य को कम रखना है ताकि निर्धन वर्ग भी वे उन्हें खरीदने में सक्षम हो सके परंतु विकसित देश सब्सिडी देते हैं ताकि वे अपने अनाज को अन्य देशों की मंडियों में डंप कर सकें। डब्ल्यूटीओ के अधीन सब्सिडी हटने से विदेशी उत्पादों की कीमतों में वृद्धि होगी जिससे भारतीय कृषि उत्पाद की प्रतिस्पर्धात्मक शक्ति बढ़ेगी तथा भारतीय उत्पाद विश्व बाजार में बेहतर स्थिति में होंगे।

भारतीय किसानों का अपना सामान बेचने के लिए विभिन्न देशों के कृषि उत्पादों से प्रतिस्पर्धा करनी पड़ेगी। प्रतिस्पर्धा में टिके रहने के लिए किसान आधुनिकतम विधियां अपनाने को बाध्य भी होंगे तथा प्रेरित भी होंगे। इसी कारण से आधुनिक आदानों के प्रयोग को प्रोत्साहन मिलेगा, उत्पादन व विपणन में दक्षता आयेगी, साख सुविधाओं का विस्तार होगा, आधारभूत संरचना का निर्माण होगा तथा उपभोक्ताओं को भी उचित कीमतों पर अधिक गुणवत्ता के कृषि उत्पाद प्राप्त हो सकेंगे। प्रतिस्पर्धा तथा आंतरिक और बाह्य प्रतिबंध के कारण बाजारी शक्तियों की मांग व पूर्ति का कार्य सुगम हो सकेगा जो कि भारत में कृषि की स्थिति सुधारने के लिए आवश्यक है।

न्यूनतम बाजार पहुंच के प्रावधानों के कारण भारतीय कृषि उत्पाद के लिए बाजार का विस्तार होगा। व्यापार प्रतिबंध हटने के कारण कीमतें कम होंगी जिससे उपभोक्ताओं की शक्ति बढ़ेगी। इन दोनों ही कारणों से कृषि उत्पादों की मांग में वृद्धि होगी तथा कृषि से प्राप्त आय भी बढ़ेगी। जिससे कृषि एक लाभदायक व्यवसाय के रूप में उभरेगा। उदारीकरण से पूर्व भारत में उद्योगों को अत्यधिक संरक्षण प्राप्त था जिसके कारण उद्योग कृषि की तुलना में एक लाभदायक व्यवसाय के रूप में उभरा तथा निवेश कृषि से उद्योगों में स्थानान्तरण हुआ। परंतु उदारीकरण के बाद से उद्योगों से संरक्षण हटाया जा रहा है जिससे कृषि को लाभ होगा। 90 के दशक से ही सापेक्षिक मूल्य उद्योग से कृषि की ओर विवर्तित हुए हैं जो इस बात का प्रमाण है कि कृषि उत्पादन की लाभदायकता बढ़ी है।

पिछले कुछ वर्षों से कृषि में सरकारी विनियोग घटता जा रहा है। ऐसे में निजी विनियोग अधिक महत्वपूर्ण है। उदारीकरण के बाद से कृषि क्षेत्र को बड़ी–बड़ी औद्योगिक कंपनियों के निवेश के लिए खोल दिया गया है अतः अब निजी निवेश में वृद्धि होगी। इसके अतिरिक्त देश में फार्म कृषि का विकास होगा, नवीन उच्च तकनीक का प्रयोग करने के लिए आवश्यक संसाधन प्राप्य होंगे, कृषि उत्पादकता बढ़ेगी तथा बड़ी कंपनियों के इस क्षेत्र में प्रवेश करने पर कृषि क्षेत्र में कर को भी उचित ठहराया जा सकता है। कृषि पर आय से सरकार के राजस्व में भी वृद्धि होगी।

विदेशी निवेशकों के लिए अर्थव्यवस्था को खोल देने के कारण कृषि मे विदेशी पूंजी निवेश में वृद्धि की संभावना है तथा अनेक देशी व विदेशी कंपनियां इस क्षेत्र में आ भी चुकी हैं। जैसे आईटीसी, पेप्सी, हिंदुस्तान लीवर आदि।

बहुराष्ट्रीय कंपनियां भारत को बीजों के उत्पादक स्थल के रूप में चुन सकती हैं। क्योंकि भारत में सस्ता श्रम व पोलीनेशन के लिए उचित मौसम उपलब्ध है। इससे देश में विदेशी पूंजी आयेगी तथा संकर बीज बनाने की तकनीक भी भारत में आ सकती है। हरियाणा में एक बहुराष्ट्रीय कंपनी द्वारा इस प्रकार का परीक्षण भी किया गया है।

नवीन आर्थिक–नीति में कृषि, निर्यात व रोजगार सृजन के लिए एक महत्वपूर्ण स्रोत के रूप में उभरा है। कृषि का औद्योगीकरण हुआ है तथा कृषि उद्योग भी विकसित हुआ है। ऐसोचेम की 2002 की रिपोर्ट के अनुसार मत्स्यपालन, रेशम कीटपालन, वनीकरण, एकीकृत वानिकी बंजर भूमि विकास, भूसंरक्षण, कंपोस्ट खाद तैयार करने और जैव कृषि में रोजगार की असीम संभावनाएं हैं। आंतरिक प्रतिबंध देश में कृषि–विकास में बाधा पहुंचाते थे परंतु अब नियंत्रणों में ढील होने के कारण आंतरिक कृषि व्यापार बढ़ेगा तथा किसान लाभान्वित होगा।

हानि

पिछले कुछ वर्षों से कृषि उत्पादन की वृद्धि दर या तो ऋणात्मक है अथवा असंतोषजनक है। 1996–97 में कृषि निर्यात उच्चतम स्तर पर था परंतु इसके बाद से इसमें भी गिरावट आ रही है। ये तथ्य व्यक्त करते हैं कि कृषि सुधार तथा उदारीकरण अपने निर्धारित लक्ष्य तक पहुंचने में असमर्थ रहे हैं। जिनके अनेकानेक कारण हैं। प्रथमतः उदारीकरण के लाभ असमान हैं। उदारीकरण का मुख्य लाभ अमीर किसानों को ही हुआ है क्योंकि उनके पास नये बीज उपकरण मंगाने के लिए साधन हैं। लघु और सीमांत किसानों को कोई लाभ नहीं हुआ है जबकि हमारे देश की कुल कृषि आधारित जनसंख्या में इसका भाग 78 प्रतिशत है। विकसित देश, भारत जैसे विकासशील देशों की अपेक्षा पूंजी–प्रचुर हैं तथा उदारीकरण से अधिक लाभ प्राप्त कर रहे हैं। यदि और अधिक विश्लेषण किया जाये तो ज्ञात होता है कि कृषि के उदारीकरण का लाभ मोनसेंटो जैसी विश्व की कुछ बड़ी कंपनियों ने ही उठाया है तथा किसानों को नगण्य लाभ मिला है।

भारतीय किसान पुरानी परंपरागत कृषि पद्धतियों तथा आदानों पर निर्भर है जबकि विकसित देश का किसान ट्रांसजेनिक बीजों का प्रयोग कर रहा है, उसकी उत्पादकता अधिक है, आधुनिकतम तकनीक तथा उच्च स्तर की सब्सिडी प्राप्त है जिसके कारण उनकी उत्पादन लागत कम है। अतः भारतीय कृषि उत्पाद प्रतियोगिता में टिक नहीं पायेगा। वर्तमान में अंतर्राष्ट्रीय कृषि मूल्यों में गिरावट की प्रवृत्ति है जबकि भारतीय बाजार में कीमतों में वृद्धि हुई हैं जिससे भारत के उत्पादों की प्रतिस्पर्धात्मक शक्ति और कम हो रही है। भारतीय उत्पादों का प्रमाणीकरण न होने के कारण भी कभी–कभी समस्या आती है। उदाहरणार्थ वर्ष 2001 में न्यूनतम समर्थन मूल्य से 200 रुपये क्विंटल कम मूल्य पर गेहूं इराक भेजे गए। अर्थात् सरकार ने हानि उठाकर भी सिर्फ अतिरेक खाद्यान्न से छुटकारा पाने के लिए गेहूं इराक भेजा परंतु उसने केवल एक घुन के कारण सारे गेहूं वापस कर दिए।

भारत में कृषिगत सकल घरेलू उत्पाद का केवल 0.3 प्रतिशत ही कृषि शोध पर व्यय किया जाता है जबकि अमेरिका और आस्ट्रेलिया में यह राशियां इस क्षेत्र में सकल घरेलू उत्पाद की क्रमश 2.8 प्रतिशत तथा 4 प्रतिशत हैं। विकसित देशों में कृषि–शोध पर व्यय बढ़ता ही जा रहा है। नई–नई विधियों जैसे टिश्यू कल्चर, इन विटो फर्टिलाइजेशन के पश्चात अब बायोटेक्नोलॉजी, जीन–टेक्नोलॉजी में

उनके कृषि अनुसंधान प्रवेश कर गए हैं। सूई की नोंक के व्यास जितनी सूक्ष्म कोशिका के अंदर पाए जाने वाली अति सूक्ष्म इकाई "जीन" को जैव रासायनिक विधियों से परिवर्तित कर दिया जाता है तथा लाभदायक गुणों वाली "जीन" जैसे अधिक उत्पादकता, कीटों और खरपतवार के विरुद्ध सुरक्षा आदि को प्रवेश करा दिया जाता है। जिससे उनके उत्पादों की गुणवत्ता वृद्धि तथा लागत कमी का क्षेत्र भी बढ़ गया है। जिससे उनके उत्पादों की गुणवत्ता वृद्धि तथा लागत कमी का क्षेत्र भी बढ़ गया है। भारत में प्रतिभा तो है पर हम धन व जागरूकता के अभाव में उसका उपयोग नहीं कर रहे हैं। हमारे युवा जीव वैज्ञानिकों को रोजगार के अवसर उपलब्ध नहीं हैं तथा जो अनुसंधान भारत में किए जा रहे हैं उन खोजों का लाभ भारतीय किसान नहीं उठा पा रहे हैं। भारतीय किसानों को वैज्ञानिक खेती की पूरी जानकारी नहीं हो पायी है। रेडियो और टेलिविजन के माध्यम से कृषि दर्शन, कृषि समाचार, चौपाल जैसे कार्यक्रम संचालित किए जाते हैं। परंतु गांव में सभी किसानों के पास न तो टेलिविजन और न ही रेडियो हैं। अतः ऐसे कार्यक्रमों का लाभ भी सीमित संख्या में किसानों को मिला है। वैज्ञानिक चिंतन, वैज्ञानिक अभिरुचियों, विधियों व प्रणालियों का अभाव हमारी कृषि को प्रतिस्पर्धात्मक नहीं बनने दे रहा है। यदि अधिक स्पष्ट शब्दों में कहा जाये तो खाली प्रतियोगिता से लाभ उठाना तो दूर की बात है हमारे कृषि उत्पाद के विश्व स्तर पर पिछड़ने की ही अधिक संभावना है यदि शीघ्रातिशीघ्र उपाय नहीं किये गये।

विकसित देशों ने डब्ल्यूटीओ के कृषि समझौते का अभी तक क्रियान्वयन नहीं किया है। वे अभी भी अपने कृषि उत्पादों पर भारी मात्रा में सब्सिडी दे रहे हैं। अमेरिका ने दो वर्षों में अपने किसानों को 90 हजार करोड़ रुपये की "प्रोटेक्टेड सब्सिडी" दी जो डब्ल्यूटीओ के दायरे में नहीं आती है। यूरोपीय संघ में शामिल देश कुल मिलाकर प्रति वर्ष 114.5 अरब डालर की कृषि सब्सिडी देते हैं जिससे उनके 70 लाख किसानों को लाभ होता है जबकि भारत अपने करीब 12 करोड़ किसानों को प्रतिवर्ष एक अरब डालर की सब्सिडी देता है। अंतर्राष्ट्रीय मुद्राकोष तथा विश्व बैंक की शर्तें सब्सिडी कम करने को बाध्य कर रही हैं।

विकसित देशों ने प्रशुल्कों के स्तर में भी वांछित कमी नहीं की है तथा बाजार में पहुंच प्रतिबंध का मजाक उड़ाया है। जबकि भारत ने 2001 में परिमाणात्मक प्रतिबंधों की पूर्णतः समाप्ति कर दी है। अर्थात् हमारे बाजार तो विकसित देशों के लिए खुल गए हैं जबकि उनके बाजारों तक हमारी पहुंच अभी तक संभव नहीं हो पायी है। जो शक्तिशाली हैं वो अपने लाभ के लिए नियमों का तोड़–मरोड़ कर पेश कर देते हैं तथा विकासशील देश उनका विरोध नहीं कर पाते क्योंकि उनमें एकजुटता का अभाव है तथा वो स्वयं एक–दूसरे के प्रतिद्वंद्वी हैं और यदि हमारे कृषि उत्पाद विकसित देशों के बाजार में अपना स्थान बना भी लेते हैं तो विकसित देश "सेनीटरी व फाइटोसेनीटरी उपायों के तहत उस पर प्रतिबंध लगा देते हैं।

डब्ल्यूटीओ का "ट्रिप्स समझौता" भी पक्षपातपूर्ण है। विकासशील देश अपनी जैविक और प्राकृतिक संपदा से अपना प्रभुत्व खोते जा रहे हैं तथा विकसित देश कृषि जन्म उत्पादों पर अपना एकाधिकार स्थापित कर लेंगे। अब पेटेंट सूक्ष्म जीवों तथा जीवविज्ञानी विधियों पर भी लागू होता है। जिसके कारण बीजों की कीमतों में वृद्धि होगी क्योंकि अब बीज–उत्पादकों को उनके द्वारा रायल्टी दी जाएगी जो बीज उत्पादकों द्वारा बनाए गए बीजों का प्रयोग करते हैं। अब प्रत्येक अगली फसल के लिए किसानों को नए बीज खरीदने पड़ेंगे जो कि भारत जैसे देश के गरीब किसानों के लिए बड़ी समस्या होगी।

अब संपूर्ण विश्व एकीकृत होकर एक बड़ी मंडी के रूप में परिवर्तित होता जा रहा है। अतः मूल्यों में उतार–चढ़ाव की अधिक संभावना होगी भारतीय कृषि जो कि अभी भी मानसून पर आधारित है, इन झटकों को कितना झेल पाएगी तथा किसानों के हितों की कितनी रक्षा हो पाएगी यह समय ही बताएगा।

सुझाव

उदारीकरण से समान लाभ प्राप्त हो इसके लिए आवश्यक है कि हम ऐसी नीतियां बनाए जिनसे भूमिहीन, साधनहीन किसानों, कृषि मजदूरों को वास्तविक रूप में लाभ पहुंचे। अर्थात् नीतियों का उद्देश्य 'सामाजिक न्याय के साथ विकास' होना चाहिए।

वैज्ञानिक जागरूकता, विधियों और पद्धतियों का अभाव हमारी कृषि को प्रतिस्पर्धी नहीं बनने दे रहा है। किसानों में इस जागृत्ति के लिए आंदोलन चलाना होगा। इस दिशा में सरकारी संस्थाओं जैसे कृषि अनुसंधान संस्थाओं, कृषि विज्ञान केन्द्र, कृषि प्रसार विभाग व कृषि विश्वविद्यालयों को अधिक प्रयास करने चाहिए। इन संस्थाओं को आपस में भी समझौते करने चाहिए ताकि कृषि शोध के लिए धन और मार्गदर्शन दिया जा सके। दसवीं योजना में कृषिगत सकल घरेलू उत्पाद का न्यूनतम एक प्रतिशत एक शोध पर खर्च किया जाना चाहिए।

कृषिगत निर्यात को बढ़ावा दिया जाना चाहिए। इसके लिए निर्यातों से प्रतिबंध हटाना, नए बाजार की खोज करना, निर्यात के लिए स्पष्ट नीति का निर्धारण कृषि उत्पादों की क्षमता बढ़ाना, बागवानी फसलों, फल, सब्जी आदि नयी संभावनाओं वाली फसलों पर ध्यान देना चाहिए।

कृषि उत्पादन और उत्पादकता में वृद्धि लाने के लिए तकनीक विकास, भू सुधार, जीन रूपांतरित फसलों का प्रयोग, कीट नियंत्रण प्रबंध, उर्वरक और सिंचाई जैसे आदानों का अनुकूलतम प्रयोग किया जाना चाहिए।

अमेरिका में 4 प्रतिशत, ब्रिटेन में 3 प्रतिशत तथा फ्रांस में 6 प्रतिशत लोग कृषि पर कार्य लगे हैं जबकि भारत में 62 प्रतिशत लोग कृषि पर आधारित हैं अतः हमें यह ध्यान रखना होगा कि कृषि उत्पादों के सस्ते आयात से हमारी ग्रामीण अर्थव्यवस्था को भारी क्षति न पहुंचे। इसके लिए हमें ऐसे क्षेत्रों के पक्ष में नीतियों को मोड़ना होगा जो विश्व व्यापार संगठन के अनुरुप हों तथा किसानों के लिए भी अच्छी हों। इसके लिए हमें विकसित देशों की रणनीति के आधार पर ही रुपरेखा तैयार करनी होगी।

भारत में सस्ता श्रम उपलब्ध है। यहां उर्वरक तथा कीटनाशकों का कम उपयोग किया जाता है जिसके कारण कृषि उत्पाद गुणवत्ता भी अधिक है। अतः यदि सरकार आधारभूत संरचना, मानवीय और आर्थिक पूंजी के निर्माण, कृषि रिसर्च को बढ़ावा देने में सफल होती है तो कृषि उदारीकरण से भारत की ग्रामीण अर्थव्यवस्था को अधिक लाभ होगा। ❑

(लेखिका अर्थशास्त्र की शोध छात्रा हैं)

उत्तरांचल में ग्रामीण विकास
चुनौतियां और संभावनाएं

पुष्पेश पंत

अक्सर यह कहा जाता है कि 'भारतमाता ग्रामवासिनी' है, अर्थात् हमारे देश की अधिकांश जनता गांव–देहात में बसती है। इसी तरह एक और प्रसिद्ध कविता की पंक्ति हमें बतलाती है, 'अहा! ग्राम्य जीवन भी क्या है, खपरैलों पर बेलें छाईं' आदि। विडंबना यह है कि गांव का जीवन हमेशा और हर जगह आकर्षक और सुंदर नहीं होगा। रोजमर्रा की जिंदगी काफी कष्ट भरी और कठिन होती है। दो–चार दिन की छुट्टियां गांव के एकांत में बिताने वाले शहरी इस यथार्थ से आमतौर पर अपरिचित ही रहते हैं। आज़ादी के बाद के वर्षों में सरकार का प्रयत्न यह रहा है कि इस विसंगति को समाप्त किया जा सके और ग्रामीण विकास के लिए ऐसी योजनाएं तैयार कर लागू की जाएं जिनसे गांवों का पिछड़ापन दूर हो सके और देश की आबादी के सबसे बड़े हिस्से के जीवन स्तर में सुधार लाया जा सके। इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि बिजलीकरण हो या सड़क निर्माण, अस्पताल हो या स्कूल; देश के कोने–कोने तक इन्हें पहुंचाने का अभियान तेजी से चलाया गया है और इससे कई जगह 'कायाकल्प' हुआ भी है। पर इस बात को भी अनदेखा नहीं किया जा सकता कि इन योजनाओं का लाभ सभी जगह समान रूप से नहीं हुआ है। हमारा देश बहुत विशाल है, भांति–भांति की विविधताओं को अपने में समेटे है और क्षेत्रीय–स्थानीय समस्याएं इतनी भिन्न हैं कि 'सर्वत्र एक ही समाधान' प्रस्तुत करने वाली 'ग्राम विकास योजना' हमेशा कुछ न कुछ कसर छोड़ ही जाती है। ऐसी ही स्थिति आज उत्तरांचल में देखी जा सकती है।

उत्तरांचल राज्य की मांग उठी ही इस आक्रोश और असन्तोष के कारण थी कि बड़े राज्य उत्तर प्रदेश के मैदानी इलाकों की प्रगति की जो भी रूपरेखा, योजनाएं बनाई जाती रही थीं उनमें पहाड़ी क्षेत्र की विशेष–स्थानीय ज़रूरतों और समस्याओं की उपेक्षा की जाती रही है। बात और आगे बढ़ाने के पहले इस पहाड़ी राज्य की भौगोलिक स्थिति और ऐतिहासिक अनुभव की चर्चा परमावश्यक है।

पहाड़ी गांवों की कोई तुलना मैदानी इलाके के गांवों से नहीं की जा सकती है। मैदानों में कई सारे घर–परिवार मिलकर एक जगह रहते हैं– गांव की स्पष्ट पहचान होती है, केन्द्र में चौपाल, मंदिर या मस्जिद, साझे का कुंआ, जुड़े खेत–चारागाह, अमराई बागान बगैरह। यह कल्पना की जा सकती है कि मैदानी इलाके के हर गांव तक पक्की सड़क पहुंचाई जा सकती है और इसके बाद स्कूल, अस्पताल, तहसील का जिला मंडल मुख्यालय तक गांव वालों की पहुंच आसान हो जाती है। पड़ोस का रेल स्टेशन या कस्बे–शहर का दफ्तर–कारखाना इनसे भी गांव वाले जुड़ जाते हैं। पहाड़ों के संदर्भ में यह सोच पाना असंभव है। पहाड़ी गांवों का अस्तित्व सीढ़ीदार खेतों के बीच छितराए घरों या घरों की एक लंबी पंक्ति के रूप में ही प्रकट होता है। कभी–कभी पूरे गांव में कुल दो चार परिवार ही रहते हैं– जमा आबादी बीस–पचीस। इनमें भी बच्चे–बूढ़े और औरतें ही अधिक। दूसरे गांव–एकाध किलोमीटर दूर ऊबड़–खाबड़ ज़मीन पार कर पगडंडियों पर चलकर ही पहुंचा जा सकता है। हर गांव तक पक्की छोड़िए, कच्ची सड़क या खड़के तक बनाने की चुनौती ही काफी विकट है।

ग्रामीण विद्युतीकरण की योजनाओं को लागू करते वक्त दलित तबके के गांवों तक बिजली पहुंचाने के काम को प्राथमिकता दी गयी। तब यह बात सामने आई कि एक छोटे से दुर्गम–दूरस्थ गांव तक बिजली की रोशनी पहुंचाने के लिए कितनी लंबी लाइन खींचनी पड़ेगी, कितने खंभे गड़ेंगे और रास्ते में इस बिजली से वंचित रहने वालों का असंतोष कितना बढ़ेगा। एक और समस्या भी उजागर हुई। अकेले एक गांव में निरंतर बिजली की आपूर्ति की निगरानी कठिन है। खंभे गाड़

देने या तार खींचकर एक बार बल्ब जला देने से विद्युतीकरण को संपन्न नहीं माना जा सकता। बिजली कितने घंटे आती है, वोल्टेज कितना है आदि बातें बेहद महत्वपूर्ण हैं। मैदानी इलाकों में जनसंख्या के घनत्व के कारण इस तरह की शिकायतें ज़्यादा समय तक अनदेखी–अनसुनी नहीं रह सकतीं पर उत्तरांचल के चमोली, उत्तरकाशी जैसे बेहद विरल आबादी वाले जिलों के गांवों की व्यथा मूक ही रह जाती है। पिथौरागढ़, बागेश्वर, रुद्रप्रयाग की स्थिति इससे ज़्यादा बेहतर नहीं। जो लोग यथार्थ से कटे नहीं इस बात को भली भांति समझते हैं कि देहरादून, हरिद्वार, उधमसिंह नगर, नैनीताल के शहर, कस्बे और गांव उत्तरांचल राज्य के सभी गांवों की जिंदगी की असलियत नहीं।

जिस तरह की समस्या का उल्लेख सड़क–निर्माण या विद्युतीकरण के बारे में किया गया है उसी का सामना पेय जल अथवा सिंचाई के संसाधन सुलभ कराने के बारे में भी पड़ता है। मैदानी गांवों में पानी भूतल के काफी निकट (अधिकतर जगहों में) सुलभ होता है। कुएं, हैंडपंप, टयूब वैल कम खर्च में (अपेक्षाकृत) और आसानी से लगाए जा सकते हैं। उत्तरांचल में यह काम दूभर है।

सबसे क्लेशदायक बात तो यह है कि प्रगति और विकास की प्रक्रिया ने ही कई जगह पारंपरिक जलस्रोतों को नष्ट कर दिया है। सड़क निर्माण, खदान–खनन, जंगलों का कटान, बढ़ते 'शहरीकरण' और भवन निर्माण ने धारे–मौजे सुखा दिए हैं। पीढ़ियों पुरानी गूलें–नहरें रख–रखाव के अभाव में जर्जर– मृतप्राय हैं। विभागीय योजनाएं हों या स्वैच्छिक ग़ैर–सरकारी संगठनों के उद्यम हर गांव को स्वच्छ पेय जल और उसकी जरूरत भर सिंचाई का पानी पहुंचाने का काम अभी अधूरा है। यह विषय दोषारोपण तक सीमित नहीं रहना चाहिए। असली चुनौती वैकल्पिक समाधान ढूंढने की है। क्या बड़ी केन्द्रीकृत परियोजनाओं को प्रोत्साहित नहीं किया जा सकता। 'रेनवाटर हार्वेस्टिंग' हो (वर्षा जल संचय) या जलअभिगम क्षेत्र का सामुदायिक प्रबंधन (वॉटर शैड मैनेजमैंट) उत्तरांचल के गांवों के विकास में इनकी भूमिका निर्णायक हो सकती है।

कोई तीस–चालीस साल पहले तक जल ऊर्जा का प्रयोग पन–चक्कियों को चलाने के लिए किया जाता था जिन्हें घट–घराट कहते थे। थोड़े से परिवार से और समीचीन टेक्नोलॉजी के निर्माण के संयोग से इन्हें 'लघु' बिजलीघरों में बदला जा सकता है। इसके अलावा बून केदार इलाके में उद्यमी गांववालों ने आईआईटी के स्नातक इंजीनियर योगेन्द्र कुमार की सहायता से 'अपना मिनी माइक्रो पॉवर प्लांट' लगाया और सफलतापूर्वक चलाया है। यह बात समझ नहीं आती कि टिहरी बांध जैसी दैत्याकार परियोजनाओं के व्यापक विरोध और अनिश्चित् फायदों के बाद भी इस तरह के प्रयासों की तरफ प्रशासकों और नियोजकों का ध्यान क्यों नहीं जाता?

जाहिर है कि दुर्गम और दूरस्थ इलाकों के गांवों को भी बेहतर चिकित्सा और शिक्षा सेवाएं मुहैया कराने का काम टाला नहीं जा सकता। एक बार फिर यह याद रखने की जरूरत है कि मैदानों वाला नुस्खा पहाड़ी मरीज का इलाज नहीं कर सकता कभी भी। दुआ भी यही है कि ऐसा करने के हठ में 'मर्ज बढ़ता गया ज्यों–ज्यों दवा की'। राजनैतिक दबाव में जगह–जगह अस्पताल या कॉलेज खोलने से सिर्फ सीमित–सार्वजनिक संसाधनों की बरबादी हुई है। डाक्टर और शिक्षकों के अभाव में ईंट–पत्थर गारे की इमारतें किसी काम की नहीं होतीं। इन जगहों पर जिन अधिकारियों की तैनाती होती है उन्हें यह सजा लगती है। बहुत सीमित संख्या में छात्रों या मरीजों के संपर्क में आने से इन डाक्टरों–अध्यापकों का पेशेवर कौशल भी जंग खाने लगता है। दवाओं–उपकरणों के अभाव से भी वह असमर्थ और लाचार रहते हैं। ऐसा नहीं कि मैदानों के गांवों में ऐसी स्थिति नहीं होती। पर आसानी से 'पहुंच' पाने के कारण एक बड़े कॉलेज, अस्पताल का 'साझा'' बहुत बड़ी आबादी कर सकती है। इसके अलावा एक बड़े अस्पताल या स्कूल कॉलेज की चौकसी–निगरानी ऐसी जगह आसानी से संभव है जो खुली जगह पर सबकी नज़र के सामने हो।

हमारी समझ में फिर एक बार उत्तरांचल की विशेष स्थिति–परिस्थिति को देखते हुए अनूठे वैकल्पिक समाधान तलाशने और तराशने की ज़रूरत है। जैसे ऊर्जा के क्षेत्र में पनबिजली और सौर या पवन ऊर्जा को विधिवत् प्रोत्साहित करने की जरूरत है– सिर्फ रस्म अदाई के तौर पर गैर–पारंपरिक ऊर्जा विभाग या अधिकरण की स्थापना भर नहीं; वैसे ही स्वास्थ्य सेवाओं और शिक्षा के क्षेत्र में सचल चिकित्सक दस्तों, सचल अस्पतालों और 'दूर–दराज' (डिस्टैंस एजूकेशन) के बारे में 'युद्ध स्तर' पर सोचने की ज़रूरत है। आज उत्तरांचल में यदि मैदानी गांवों की तुलना में जीवन अधिक दुष्कर है तो उसका कारण यही है कि स्वास्थ्य सेवाओं और शिक्षा के क्षेत्र में सरकारी/सार्वजनिक व्यवस्था के सुचारू न होने के कारण मुनाफाखोर 'उद्यमियों' की बाढ़–सी आ गयी है। प्राइवेट झोलाछाप डॉक्टरों और प्राईवेट–पब्लिक स्कूलों की गतिविधियों पर नियंत्रण करना कठिन होता जा रहा है। इस बारे में हताश होने से काम नहीं चलेगा। राष्ट्रीय मुक्त विद्यालय हो या इंदिरा गांधी मुक्त विश्वविद्यालय इनके माध्यम से, आधुनिकतम–सार्थक टेक्नोलॉजी का प्रयोग नाटकीय हस्तक्षेप कर सकता है। ज्ञान वाणी–ज्ञान दर्शन के अतिरिक्त जिस तरह का विशेष 'पैकेज' पूर्वोतरी राज्यों के लिए बनाया गया है। व्यावसायिक–रोजगारोन्मुखी प्रशिक्षण में जन शिक्षण संस्थानों का योगदान सरकारी–पारंपरिक औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थानों से कहीं अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

आज भूमण्डलीकरण और आर्थिक उदारीकरण के युग में, सर्टिफिकेट या मान्यता प्राप्त डिग्री से अधिक जोर कौशल और निपुणता को दिया जा रहा है। पहाड़ की ज़रूरतों को देखते हुए, स्थानीय नौजवानों को यदि प्रशिक्षित किया जाएगा तो स्वरोजगार के मौके विकसित होंगे ही – प्रतिभा और श्रम का पलायन भी रुकेगा।

अंत में, यह याद रखने की, याद दिलाने की ज़रूरत है कि सतही तौर पर देखने में ही उत्तरांचल की समस्याएं अनोखी–अनूठी लगती हैं। वास्तव में सभी पहाड़ी राज्यों में ग्रामीण विकास की बुनियादी चुनौतियां एक–सी रहती हैं– हिमाचल प्रदेश हो या दूसरे छोर पर अरुणाचल प्रदेश। हिमाचल, उत्तरांचल तथा पूर्वोत्तरी राज्यों के बीच सहकार–सहयोग और अनुभव की साझेदारी के अभाव में अकेले उत्तरांचल के ग्रामीण विकास की गति तेज़ नहीं की जा सकती। असली चुनौती इसी सहकार–सहयोग को साधने की, साझे के सपनों को साकार करने की है। ❑

(लेखक जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में प्रोफेसर हैं)

राष्ट्रीय कृषि विज्ञान संग्रहालय एक अनूठा संस्थान

रमेश चंद्रा

"हर काम इंतजार कर सकता है पर कृषि नहीं" – **जवाहरलाल नेहरू**

करीब 45 वर्ष पूर्व सन् 1960 में देश के पहले कृषि विश्वविद्यालय के खुलने के साथ ही भारत में अनाज का उत्पादन बढ़ाने में वैज्ञानिक ज्ञान का प्रयोग करने की आधारशिला पड़ी। उसके बाद के वर्षों में हमने देखा कि जिस देश में लगातार अनाज की कमी पड़ रही थी वह अनाज की उपलब्धता में मामले में आत्म निर्भर हो गया, पर भारतीय उप महाद्वीप में खेतीबाड़ी के काम में अत्याधुनिक प्रौद्योगिकी के प्रयोग की इस लंबी यात्रा को उसकी विविध अवस्थाओं में चित्रित करने और लोगों की इतिहास की परतों में ले जाने के लिए एक कृषि विज्ञान संग्रहालय के लिए देश को स्वाधीनता के बाद करीब छह दशक तक प्रतीक्षा करनी पड़ी।

राष्ट्रपति डा. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम ने राष्ट्रीय कृषि विज्ञान संग्रहालय का उदघाटन किया। स्वयं एक वैज्ञानिक और गहन अवलोकक होने के नाते डा. कलाम ने इस नवगठित संग्रहालय और इसमें की गयी प्रस्तुति की सराहना की।

सभी संग्रहालयों की तरह कृषि विज्ञान संग्रहालय को भी गतिशील होना पड़ेगा। भारत जैसे विशाल जैविक, आनुवांशिक और जलवायु विविधता वाले देश में किसी भी संग्रहालय को सभी क्षेत्रों, सभी फसलों और वैज्ञानिक विकास की सभी घटनाओं का केवल नाममात्र का चित्रण करने में ही कई दशक लग सकते हैं।

इसके बावजूद नया खुला यह संग्रहालय पुराने समय से अब तक कृषि कार्य के रुपांतर और इस क्षेत्र में वैज्ञानिक प्रगति संबंधी सूचनाओं का एक भव्य संग्रह है। वहां रखे तैल चित्रों और पुरातात्विक वस्तुओं के बारे में दर्शकों को समझाने की व्यवस्था है। यह काम एक यांत्रिक आवक्ष मूर्ति के माध्यम से किया जाता है जो ऐसी वस्तुओं से संबंधित पूरी कथा का वर्णन करती है।

यह संग्रहालय 10 खंडों में बांटा गया है। प्रत्येक खण्ड पूर्व इतिहास काल से आज तक के विभिन्न काल खंडों में कृषि के विकास और तकनीकी प्रगति दर्शाता है। इसमें एक खंड बच्चों के लिए है।

संग्रहालय की भावना की सांकेतिक प्रस्तुति करते हुए संग्रहालय भवन में छह स्तंभ बनाए गए हैं। ये स्तंभ, मृदा, जल, जलवायु, बीज, उपकरण और कृषक के प्रतीक हैं। कृषि में इन स्तंभों के योगदान का वहां आडियो–विजुअल तथा इलैक्ट्रॉनिक माध्यमों के प्रयोग से सजीव चित्रण किया गया है।

यूं तो इस संग्रहालय में तरह–तरह के बीज, उपकरण, चिड़ियों और मछलियों की विभिन्न प्रजातियों को उनके वास्तविक रूप में साक्षात देखा जा सकता है पर जो चीजें साक्षात नहीं प्रस्तुत की जा सकतीं, उन्हें माडलों के जरिए पेश किया गया है।

पूर्व ऐतिहासिक और वैदिक काल में कृषि

इस काल के बारे में संग्रहालय में दिखाया गया है कि किस तरह घुमंतू और भटकती शिकारी मानव जातियों ने प्रारंभिक अवस्था के ग्राम्यजीवन में बसकर कृषि कार्य शुरु किया और धीरे–धीरे खेतिहर समाज बनता गया। उस युग में लोगों ने नए–नए औजार विकसित किए और कौशल प्राप्त किया। मनुष्य ने मिट्टी के बर्तन बनाना सीखा और अनाज की पिसाई और कपड़ा बुनने की कला भी आ गयी। लोग जानवर पालने लगे। संग्रहालय के प्रागैतिहासिक खंड में 'प्रारंभिक मानव और भोजन की तलाश' शीर्षक के अंतर्गत मनुष्य के विचरण से बसावट के बीच की कथा चित्रित की गयी है।

समय के प्रवाह के साथ बस्ती और समाज अधिक समुन्नत हुए। सिंधु घाटी की सभ्यता आने तक किसान कृषि कार्य में तांबे और कांसे का प्रयोग करने लगे थे। हल का आविष्कार कर लिया गया और ढुलाई के लिए पहियों वाली गाड़ी इस्तेमाल होने लगी। सिंचाई शुरु होने से खेती का पैमाना बढ़ा और गेहूं, जौ, दलहन और अन्य फसलों की खेती होने लगी। अधिक मात्रा में उत्पन्न अनाज के संग्रह के लिए खत्ती और बखारों का तरीका ढूंढ निकाला गया।

वैदिक और उत्तर वैदिक काल में कृषि कार्य में लोहे के उपकरणों का प्रयोग शुरू हो गया था। संग्रहालय में दर्शकों को यह देखकर मजा आता है कि वैदिक आर्यो का चंद्र–सौर पंचांग पृथ्वी की परिक्रमा और कृषि कार्यों के बीच संबंध स्थापित करने में संबंध स्थापित

करने में किस तरह सहायक हुआ। वहां पूर्ण आकार के मिट्टी की प्रतिकृतियों के माध्यम से वैदिक काल के जीवन, वेशभूषा, कार्य वितरण और गांव के वातावरण की झांकियां प्रस्तुत की गयी हैं।

मुगल काल और अंग्रेजों का प्रभाव

सल्तनत और मुगल काल में भूमि और कीमत सुधार लागू किए गए। बाबर द्वारा विकसित कराए गए बगीचों का एक लघु माडल उस जमाने में उद्यान शास्त्र में प्रगति को दर्शाता है। वहां जाने से आप को यह भी पता चलता है कि मुगल बादशाह जहांगीर किस तरह भारत के फलफूल और वनस्पतियों का ब्यौरा रखता था। उसके बाद पुर्तगालियों ने आकर भारत में कुछ नए–नए प्रकार के पौधे लगाए।

इस समृद्ध विरासत के साथ अंग्रेजी शासन के समय भारत के कृषि क्षेत्र में अनेक महत्वपूर्ण बदलाव किए गए। उस दौरान कृषि का पंजीकरण शुरु हुआ। उन्नत बीज बोए जाने लगे, बड़े बांधों का निर्माण हुआ तथा कृषि अनुसंधान व शिक्षा की व्यवस्था की गयी। अंग्रेजों के समय का एक खेदजनक पहलू यह था कि उनका ध्यान भारत में कृषि विकास से ज्यादा अपना राजस्व बढ़ाने पर था।

स्वतंत्र भारत और हरित क्रांति

स्वाधीनता के बाद भारत ने कृषि क्षेत्र में तेजी से तरक्की की। संग्रहालय में स्वाधीन भारत के कृषि विकास की जीवंत कहानी प्रस्तुत की गयी है। इसके लिए माडलों तथा दृश्य–श्रव्य माध्यमों का सहारा लिया गया है। साठ के दशक की हरित क्रांति और उसके बाद के विकास से अनाज का उत्पादन वार्षिक पांच करोड़ टन से बढ़कर 20 करोड़ टन तक पहुंच गया है।

यह संग्रहालय हरित क्रांति के नायकों का योगदान चित्रित कर उनको श्रद्धांजलि अर्पित करता है। संग्रहालय की दीर्घाओं में कदम–दर–कदम कृषि क्षेत्र में प्रयोग में आए आधुनिक उपकरणों और आनुवांशिक अभियांत्रिकी जैसी नयी उदीयमान प्रौद्योगिकियों की कहानी दर्शाई गयी है।

इस संग्रहालय की रचना में पूरी कल्पनाशीलता का परिचय मिलता है तथा इसमें युवा पीढ़ी के लिए आकर्षण और मौजमस्ती का भी ध्यान रखा गया है। संग्रहालय देखने आने वाले छात्र–छात्राएं टच–स्क्रीन प्रणाली से कृषि के तथा दैनिक कृषि जीवन के बारे में अपने ज्ञान की परख कर सकते हैं। हड़प्पा सभ्यता की कृषि, प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया, अंडे से मुर्गी तक का विकास, चाकलेट बनाना और बिस्कुट की शुरुआत– वहां ऐसी बहुत सी बातें दर्शाई गयी हैं जो बड़ों का ज्ञान बढ़ाने के साथ–साथ बच्चों की जिज्ञासा भी शांत करती हैं।

इस संग्रहालय में देश–विदेश से और भी वस्तुएं जुटाने तथा देश के विभिन्न भागों से विभिन्न चीजों के सजीव नमूने लाकर रखने की योजना है। इसमें एक और खंड जोड़ने का इरादा है जिसमें वैज्ञानिक खेती के तौर तरीके और कृषि विज्ञान में हुई प्रगति दर्शाई जाएगी। इसके पीछे मंशा है कि यह संग्रहालय ज्ञान का संग्रह केंद्र होने के साथ–साथ देश के किसानों की सेवा भी कर सके। ❑

(साभार : प्रेस सूचना कार्यालय)

सदस्यता कूपन

मैं/हम **कुरुक्षेत्र** का नियमित ग्राहक बनना चाहता हूं/ चाहती हूं/ चाहते हैं।

शुल्क : एक वर्ष के लिए 70 रुपये, दो वर्ष के लिए 135 रुपये, तीन वर्ष के लिए 190 रुपये का

(जो लागू नहीं होता, उसे कृपया काट दें)

डिमांड ड्राफ्ट/भारतीय पोस्टल आर्डर क्रमांक .... दिनांक .... संलग्न है।

नाम (स्पष्ट अक्षरों में) ....

पता ....

....

पिन ....

इस कूपन को काटिए और शुल्क सहित इस पते पर भेजिए :

विज्ञापन और व्यापार प्रबंधक, प्रकाशन विभाग,

पूर्वी खंड–4, लेवल–7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली–110 066

*कृपया ध्यान रखें, आपका डिमांड ड्राफ्ट/भारतीय पोस्टल आर्डर **निदेशक, प्रकाशन विभाग** को नई दिल्ली में देय हो।*

बीमा : संकट में सहयोग

ओम प्रकाश कश्यप

अत्याधुनिक खोजों ने आदमी को अधिक सुविधासंपन्न बनाया है, वहीं खतरे की संभाव्यता में भी वृद्धि की है। आधुनिक जीवन की विसंगति यह भी है कि मनुष्य की जोखिमों को सहने की क्षमता निरंतर घटी है। कारण यह है कि एकल परिवारों में जोखिम सहने का सामर्थ्य, संयुक्त परिवारों की अपेक्षा कम होता है। पूरा परिवार एक या दो सदस्यों की आमदनी पर टिका रहता है। ऐसे में उनमें से किसी एक या उसके व्यवसाय को होने वाली हानि से पूरा परिवार तबाह हो जाता है। संयुक्त परिवारों में कमाऊ सदस्यों की संख्या तथा पारस्परिक लगाव का आधिक्य होने के कारण, उनमें से किसी एक को होने वाला नुकसान बाकी सदस्यों में बंट जाता है। जिससे परिवार बिखराव से बचा रहता है।

संयुक्त समाजों में, व्यावसायीकरण एवं औद्योगीकरण की नीति के चलते, संयुक्त परिवारों का बचे रहना संभव नहीं रहा है। ऐसे में एकल परिवारों को संकट के समय सामाजिक एवं आर्थिक सुरक्षा प्रदान करने के लिए कुछ वैकल्पिक व्यवस्थाएं की गई हैं। जीवन बीमा उन्हीं में से एक है। यह मनुष्य के लिए सुरक्षा कवच का काम करता है। चूंकि जोखिम की आमद कभी और किसी भी रूप में हो सकती है, इसलिए बीमा भी वस्तु, व्यक्ति या व्यवसाय आधारित अनेक रूपों में पनपा है। कुछ इस तरह से कि यह हमारे आधुनिक जीवन की आवश्यकता बन चुका है। कल्याण सरकार में चूंकि नागरिकों के हितों की सुरक्षा का दायित्व सरकार का होता है। अतएव बीमा को आधुनिक सरकारों द्वारा भरपूर समर्थन दिया जाता है।

यह सच है कि बीमा की संकल्पना संकटकाल में आसन्न विपत्ति के रूप में सिर आ पड़ने वाली समस्याओं का सामना करने के लिए की गई थी। किंतु आधुनिक काल में उसके विभिन्न रूप सामने आए हैं। शिक्षा, वृद्धावस्था, विकलांगता, मृत्यु जैसी परिस्थितियों में भी बीमा कंपनियां पीड़ित व्यक्ति या उसके परिवार की विश्वसनीय मददगार के रूप में साथ खड़ी होती हैं।

यह सच है कि दुनिया की सभी बीमा कंपनियां अपने व्यावसायिक हितों को ध्यान में रखकर काम करती हैं। किंतु उनके व्यवसाय की प्रकृति ही ऐसी होती है कि बीमित व्यक्ति के नुकसान की भरपाई करने के बावजूद वे मुनाफे की स्थिति में रहती हैं। यद्यपि यह लाभ केवल सामान्य अवस्था में ही संभव होता है। यदि किसी विशेष बीमित व्यक्ति के संदर्भ में देखा जाए तो लाभ की स्थिति केवल बीमित व्यक्ति के जोखिम से बचे रहने तक ही संभव होती है। वैसी अवस्था में बीमा कंपनी उस धनराशि को पचा जाती है जो बीमित व्यक्ति या संस्था ने प्रीमियम के रूप में जमा की थी, अथवा तय शर्तों के अनुसार उसे साधारण ब्याज के साथ लौटा दिया जाता है। मगर जैसे ही वह बीमित व्यक्ति जोखिम की स्थिमि में आता है, हालात एकदम बदल जाते हैं। तब बीमा कंपनी को प्रायः बीमित व्यक्ति या संस्था द्वारा जमा कराए गए प्रीमियम से ज्यादा धनराशि का भुगतान करना पड़ता है, और उस व्यक्ति या संस्था विशेष के संदर्भ में वह नुकसान की स्थिति में आ जाती है।

यह कोई जादुई या चमत्कारी बात नहीं है, बल्कि गणित के एक लोकप्रिय नियम पर आधारित है। बीमा कंपनियों का एक सीधा–सा अर्थशास्त्र यह है कि जो बात किसी एक व्यक्ति के लिए महज एक संयोग है, अर्थात किसी प्रकरण विशेष में जिसका अनुमान लगा पाना संभव नहीं होता, वह समूह के लिए पूर्वानुमान–योग्य हो जाती है। इतनी कि उसके आधार पर सामान्य नियम बनाए जा सकते हैं। ठीक ऐसे ही जैसे कि 15 जून–2010 के दिन के तापमान के बारे में ठीक–ठाक कुछ भी बता पाना संभव नहीं है। वह बहुत कुछ उस दिन के मौसम पर निर्भर होगा। उस दिन तेज गर्मी से पारा 45 डिग्री सेल्सियस को पार भी कर सकता है, अथवा धूप–बारिश–अंधड़ आदि के संयुक्त प्रभाव से तापमान तीस डिग्री से नीचे भी गिर सकता है। परंतु जून–2010 के तापमान के बारे में, विगत वर्षों के अनुभव के आधार पर आप एक निश्चित–सा अनुमान लगा सकते हैं। हम कह सकते हैं कि उस दिन या महीने का औसत तापमान करीब 44 डिग्री सेल्सियस होगा। इस अनुमान के आधार पर सामान्य नियम बनाए जा सकते हैं।

इसे एक और उदाहरण के द्वारा भी समझ सकते हैं। मान लीजिए अलादीन नाम का एक युवक है, जिसकी वर्तमान आयु तीस वर्ष है। अब इस बारे में कोई भी दावे के साथ नहीं कह सकता कि वह युवक आगे बीस सालों तक और जिएगा या नहीं। किंतु राजधानी में इस समय तीस वर्ष के यदि पांच लाख युवक हैं तो संभाव्यता के नियम के आधार पर यह अनुमान आसानी से लगाया जा सकता है कि उनमें से पचास की अवस्था तक पहुंचने वाले युवक कितने प्रतिशत होंगे। सरकारी–गैरसरकारी सभी आकलन इसी आधार पर किए जाते हैं।

इसी सिद्धांत के आधार पर बीमा कंपनियां अपनी योजनाएं बनाती हैं। संभाव्यता का लोकजीवन में एक और उदाहरण जुआ है। यदि दो व्यक्ति जुआ खेल रहे हों तो उनमें से प्रत्येक की जीत की संभावना केवल पचास प्रतिशत होगी। अब यहां एक सवाल पैदा हो

जाता है कि एक ही नियम पर आधारित होने के बावजूद जुआ क्यों नुकसानदेह होता है। इसका सीधा-सा उत्तर यह है कि एक तो साथ-साथ जुआ खेल रहे व्यक्तियों की संख्या, बीमित व्यक्तियों की अपेक्षा बहुत कम यानी नगण्य होती है। दूसरे जोखिम की स्थिति में उसकी भरपाई के लिए उनके पास कोई वैकल्पिक सक्षम तंत्र नहीं होता। जबकि बीमित व्यक्ति की पीठ पर बीमा कंपनी का हाथ होता है जो उसके नुकसान को उन शेष बीमित सदस्यों में बांट देता है जो जोखिम से दूर हैं। स्पष्ट है कि बीमा में जोखिम घट जाता है, साथ ही व्यक्ति को संकटकाल में मदद का भरोसा बना रहता है, जो उसको दूसरी अनेक चिंताओं से मुक्त रखता है।

जुआरी की भांति हालांकि बीमित व्यक्ति भी जमा की गई प्रीमियम की रकम को दांव पर लगाता है। तो भी, यह मानना गलत होगा कि वह जुआ खेलता है। सचाई यह है कि जो व्यक्ति बीमा नहीं कराता वह जुआ खेल रहा होता है। क्योंकि उस अवस्था में अपने नुकसान की भरपाई अकेले ही करनी पड़ती है। उदाहरण के लिए फैक्टरी मालिक जिसके कारखाने में पचास लाख का माल भरा हो, बीमा की स्थिति में प्रीमियम के रूप में मामूली रकम जमा कराता है। यदि वह जोखिम से बचा रहता है तो उसके प्रीमियम की राशि या तो डूब जाएगी अथवा उस पर बहुत कम लाभार्जन कर पाएगा। लेकिन दुर्भाग्य से यदि कारखाने में आग या किसी और आपदा से तबाही मच जाए तो गैरबीमित व्यक्ति बरबाद हो जाएगा। क्योंकि वैसी स्थिति में आपदा से हुई तबाही से उबरने के लिए कोई वैकल्पिक इंतजाम उसके पास नहीं होगा। अतएव जो व्यक्ति बीमा नहीं कराता, वह भी एक तरह से जुआ ही खेल रहा होता है।

अर्थशास्त्र का प्रसिद्ध 'ह्रासमान का नियम' भी बीमा के पक्ष में जाता है। जिसके अनुसार दांव जीतने से मिलने वाली संतुष्टि, दांव हारने में मिलने वाली असंतुष्टि की तुलना में प्रायः कम ही होती है। यही बात बीमा कंपनी के पक्ष में जाती है। इसलिए कि वहां दांव हारने की स्थिति में असंतुष्टि से बचाव के लिए बीमा कंपनी, बीमित व्यक्ति के साथ होती है। अर्थशास्त्र का एक नियम यह भी है कि विभिन्न व्यक्तियों में उचित रूप से बांटी गई स्थिर आय, आर्थिक रूप से अस्थिर आय की अपेक्षा श्रेष्ठतर होती है। जो, उन भाग्यहीन व्यक्तियों के हिस्से में आती है जिनके पास नुकसान की भरपाई के लिए बेहतर विकल्प नहीं होते।

आधुनिक जीवन की जटिलताओं को देखते हुए जोखिम की संभावना को पूर्णतः टाल पाना संभव ही नहीं है। मगर ऐसे उपाय अवश्य किए जा सकते हैं जिनसे कम से कम आर्थिक नुकसान की भरपाई संभव हो सके। आधुनिक भागमभाग भरे जीवन में बीमा इसीलिए अपरिहार्य होता जा रहा है।

भारत के ही संदर्भ में लें तो देश की सबसे बड़ी बीमा कंपनी 'जीवन बीमा निगम' की प्रगति का ग्राफ उत्तरोत्तर ऊपर की ओर चढ़ता जा रहा है। निगम द्वारा बीमित सदस्यों/संस्थाओं की संख्या करोड़ों में है। अकेले वर्ष 2002-2003 के दौरान निगम ने 2,45,29,946 पालसियों में लगभग 1,79,811/- करोड़ रुपये का बीमा-व्यवसाय किया और पहली प्रीमियम आय के रूप में 9571.39 करोड़ रुपये जमा किए। निगम द्वारा यह धनराशि सरकार द्वारा अनुमोदित विभिन्न सामाजिक क्षेत्रों में निवेश की जाती है। सहकारी चीनी मिलों, हाउसिंग, बिजली, सड़क परिवहन, सिंचाई, जल आपूर्ति एवं मल निकासी, उद्योगों आदि में निगम द्वारा वर्ष 2002-2003 तक 2,65,044.47 करोड़ रुपयों का निवेश किया जा चुका है, जो देश के किसी भी अकेले सार्वजनिक प्रतिष्ठान द्वारा सरकारी योजनाओं में किए गए निवेश से कहीं ज्यादा है। इस प्रकार बीमा के रूप में किया गया निवेश न केवल आपदा के समय बीमित व्यक्ति का मददगार बनता है बल्कि विभिन्न कल्याण कार्यक्रमों के रूप में अप्रत्यक्ष सामाजिक लाभ भी देता है। फसल बीमा और पशु आधारित बीमा ने ग्रामीण क्षेत्रों में किसानों और खेतिहर मजदूरों के बीच नई चेतना का संचार किया है। यही कारण है बीमा के प्रति लोगों का आकर्षण निरंतर बढ़ता जा रहा है।

जीवन बीमा निगम के अलावा और भी कई सरकारी-गैरसरकारी बीमा कंपनियां इन दिनों बाजार में हैं। जिनके बीच स्पर्धा का माहौल हमेशा बना रहता है। भारतीय जीवन बीमा निगम को छोड़कर बाकी सभी की पहुंच अभी तक केवल शहरों और बड़े कस्बों तक ही सीमित है। ग्रामीण जनता का भरोसा भी जीवन बीमा जैसी भारतीय मूल की सरकारी कंपनियों के साथ है, शायद इसलिए कि उन्हें सरकारी संरक्षण प्राप्त है और संभवतः इसलिए भी कि उनकी योजनाओं की रूपरेखा भारतीय परिवेश और कल्याण सरकार की अवधारणाओं के अनुकूल बनाई गई है। ❑

(लेखक स्वतंत्र पत्रकार हैं)

लेखकों से

कुरुक्षेत्र के लिए मौलिक, अप्रकाशित लेखों का स्वागत है। रचना दो प्रतियों में टाइप की हुई हो और उसके साथ मौलिकता का प्रमाण-पत्र संलग्न हो। **कुरुक्षेत्र** में साहित्यिक रचनाएं प्रकाशित नहीं की जाती हैं। अस्वीकृत रचना लौटाने के लिए कृपया डाक टिकट लगा और अपना पता लिखा लिफाफा लगाएं। लेख संपादक, **कुरुक्षेत्र** कमरा नं. 655/661, विंग 'ए' गेट नं. 5, निर्माण भवन, ग्रामीण विकास मंत्रालय, नई दिल्ली-110011 के पते पर भेजें।

लघु एवं कुटीर उद्योगों की उपयोगिता

डा. सूर्य भान सिंह

भारत में प्राचीन समय से ही लघु एवं कुटीर उद्योगों की प्रधानता रही है। आज से दो हजार वर्ष पूर्व भी भारत का सूती वस्त्र एवं इस्पात उद्योग विश्व में प्रसिद्ध था। आज अविकसित या विकासशील देशों में छोटे उद्योगों की उपयोगिता और भी अधिक है। विशेषकर भारत जैसे देश में जहां पूंजी का अभाव है तथा जन शक्ति की अधिकता है वहां लघु एवं कुटीर उद्योगों के विकास के बिना आर्थिक समस्याओं का निराकरण नहीं किया जा सकता। लघु एवं कुटीर उद्योगों में कम पूंजी विनियोग करके अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है और साथ ही अधिकाधिक संख्या में बेरोजगार व्यक्तियों को रोजगार प्रदान किया जा सकता है। यही नहीं लघु एवं कुटीर उद्योग आर्थिक शक्ति के केंद्रीकरण को कम करके आय एवं संपत्ति की असमानताओं को कम करने में सहायक हैं तथा आर्थिक गतिविधियों के विकेंद्रीकरण के द्वारा प्रादेशिक असन्तुलनों को भी कम करते हैं। उपभोक्ताओं को अपने माल का लाभ प्रदान करके अपनी रुचि के अनुसार अपने विकल्प का उपयोग करने में सहयोग देते हैं।

साधारण तकनीकी ज्ञान, कम पूंजी एवं मानवीय दक्षताओं एवं कलात्मक रुचियों का उपयोग करके लघु एवं कुटीर उद्योगों द्वारा लाखों वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है। यही नहीं लघु उद्योग बड़े उद्योग का कार्यक्षेत्र अब कलात्मक वस्तुएं बनाने तथा हाथ की कारीगरी दिखाने तक ही सीमित नहीं है बल्कि अनेक दिशाओं में इनका विस्तार हुआ है। बदलते समय के अनुसार यांत्रिक शक्ति का उपयोग एवं उत्पादन की आधुनिक रीतियों को अपनाकर इन उद्योगों ने अपनी कार्यकुशलता एवं क्षमता दोनों में वृद्धि की है। हमारी राष्ट्रीय अर्थ व्यवस्था में लघु एवं कुटीर उद्योगों के महत्व को स्वीकार कर स्वतंत्रता के बाद से इनके विकास का प्रयत्न किया गया। भारत सरकार द्वारा 1948 एवं 1956 में दोनों औद्योगिक नीतियों में लघु एवं कुटीर उद्योगों के विकास पर विशेष जोर दिया गया। योजना आयोग ने भी हमारी विकास योजनाओं में विशिष्ट स्थान दिया।

लघु एवं कुटीर उद्योगों पर हमारी प्रथम तीन योजनाओं तक 459 करोड़ रुपये व्यय किए गए। चतुर्थ योजना में 244 करोड़ रुपये एवं पांचवीं योजना में 555 करोड़ रुपये व्यय किए गए जिसमें 310 करोड़ रुपये कुटीर उद्योगों पर तथा 225 करोड़ रुपये लघु उद्योगों पर व्यय किए गए। छठी योजना में 1780.40 करोड़ रुपये लघु एवं कुटीर उद्योगों के लिए तथा 620.25 करोड़ रुपये लघु उद्योगों के लिए व्यय किए गए। सातवीं योजना में 2752.74 करोड़ रुपये तथा आठवीं योजना में 6,334 करोड़ रुपये एवं नौवी योजना में 1,082 करोड़ रुपये लघु एवं कुटीर उद्योगों पर व्यय करने का प्रावधान किया गया। लघु उद्योगों को दो वर्गों में विभाजित किया जाता है। ग्रामीण एवं कुटीर उद्योग तथा आधुनिक लघु उद्योग। प्रथम वर्ग में खादी तथा ग्रामीण उद्योग, हथरघा रेशम, हस्तशिल्प तथा जूट उद्योग सम्मिलित है। द्वितीय वर्ग में आधुनिक मशीनीकृत उद्योग, पावरलूम तथा अन्य छोटे उद्योग सम्मिलित हैं। लघु क्षेत्र के कुल उत्पादन में 20 प्रतिशत कुटीर उद्योगों तथा 80 प्रतिशत आधुनिक लघु उद्योगों से प्राप्त होता है। भारत में लघु एवं कुटीर उद्योगों की प्रगति तालिका–1 में दी जा रही है।

तालिका में भारत के लघु एवं कुटीर उद्योगों में यूनिटों की संख्या, कुल उत्पादन, कुल रोजगार एवं निर्यातों के संदर्भ में संपूर्ण औद्योगिक क्षेत्र की तुलना में उच्च वृद्धि दर दिखाई गई है। 1994–95 में लघु एवं कुटीर उद्योगों में यूनिटों की संख्या 25.7 लाख, कुल उत्पादन 29,8886 करोड़ रुपये, कुल रोजगार

तालिका संख्या 1

भारत में लघु एवं कुटीर उद्योगों की प्रगति

वर्ष	लघु एवं कुटीर उद्योगों की सं. (लाख रु. में)	कुल उत्पादन (करोड़ रु. में)	रोजगार प्राप्त व्यक्तियों की सं. (लाख रु. में)	निर्यात (करोड़ रु. में)
1994–95	25.7	298886	146.6	29068
1995–96	26.6	362656	152.6	36470
1996–97	28.1	411858	160.0	39248
1997–98	29.5	462641	167.2	44442
1998–99	30.8	520650	171.6	48979
1999–2000	32.1	572887	178.5	54200
2000–01	33.7	645496	185.6	69797
2001–02	33.4	690316	192.2	79541
2002–03	35.7	742021	199.7	88325
2003–04	36.9	803463	207.3	9563

स्रोत : लघु उद्योग मंत्रालय, भारतीय आर्थिक समीक्षा 2003–04

146.6 लाख एवं कुल निर्यात 29,068 करोड़ रुपये है जब कि दस वर्षों के बाद यह बढ़कर 2003–04 में यूनिटों की संख्या 36.9 लाख, कुल उत्पादन 80,3463 करोड़ रुपये, कुल रोजगार 207.3 लाख तथा कुल निर्यात 97,563 करोड़ रुपये का हो गया है जो भारत में लघु एवं कुटीर उद्योगों की उपयोगिता एवं महत्व को दर्शाता है।

वित्तीय आवश्यकता की पूर्ति

लघु एवं कुटीर उद्योग की वित्तीय–पूर्ति में व्यापारिक बैंकों द्वारा प्रदान की जाने वाली ऋण राशियों का 56 प्रतिशत भाग औद्योगिक क्षेत्र को मिल पाता है फिर भी इसका बहुत कम भाग लघु उद्योगों को मिल पाता है। व्यापारिक बैंकों द्वारा प्रदान की जाने वाली औद्योगिक साख का केवल 16 प्रतिशत भाग ही लघु उद्योगों को प्राप्त होता है जो इस बात का प्रतीक है कि लघु एवं कुटीर उद्योगों की वित्तीय आवश्यकता के प्रति हमारे बैंक कितने उदासीन हैं। बैंकों के राष्ट्रीयकरण के बाद लघु उद्योगों को बैंकों से प्राप्त वित्तीय सहायता में वृद्धि हुई है। स्टेट बैंक एवं इसके सात सहायक बैंक इस दिशा में प्रयत्नशील रहे हैं किंतु बैंकों से ऋण प्राप्त करने की प्रक्रिया इतनी अधिक जटिल है कि लघु उद्यमी उन समस्त औपचारिकताओं को बड़ी कठिनाई से ही पूरा कर पाता है। बैंकों की भी अपनी मजबूरियां हैं। ऋणों के लिए बैंक ऐसी प्रतिभूति चाहते हैं जो तरल हो और जिसे आवश्यकता पड़ने पर सरलता से बेचा जा सके। बैंक ऋण देने से पूर्व ऋणों की सुरक्षा के लिए पूर्ण आश्वस्त होना चाहते हैं। इसीलिए वे संस्था की सुदृढ़ वित्तीय स्थिति, नियमित उत्पादकता एवं लाभ की निरन्तरता आदि पर पूर्ण विचार करके ही ऋण देने का निश्चय करते हैं।

भारत में औद्योगिक विकास बैंक द्वारा लघु उद्योगों को दिए गए ऋणों के लिए पुनर्वित्त की सुविधाएं दी जा रही हैं। लघु उद्योगों को दिए गए ऋणों के जोखिम के लिए भारत सरकार ने साख गारंटी योजना आरंभ की है। भारत सरकार द्वारा भारत के लघु उद्योग विकास बैंक की स्थापना की गई है। भारत के औद्योगिक विकास बैंक के दो सम्भागों लघु उद्योग विकास निधि तथा राष्ट्रीय इक्विटी निधि को सिडबी को सौंप दिया गया है। लघु उद्योगों को अन्य वित्तीय संस्थाओं द्वारा दिए गए ऋणों के लिए पुनर्वित्त की सुविधाएं अब सिडबी द्वारा दी जा रही हैं। लघु उद्योग–क्षेत्र की गणना प्राथमिक प्राप्त क्षेत्र में की जाती है। लघु उद्योग क्षेत्र को राज्य सरकार राज्यों के वित्तीय निगमों, राज्यों के औद्योगिक विकास एवं विनियोग निगमों से वित्तीय सहायता रियायती दरों पर प्राप्त होती है।

सहकारी बैंक ग्रामीण एवं शहरी दोनों ही क्षेत्रों में कुटीर उद्योगों को साख सुविधाएं प्रदान करते हैं। कृषि सहकारी साख समितियों का संबंध कृषि से संबंधित सहायक उद्योगों से अधिक है किंतु शहरी सहकारी साख समितियां एवं केंद्रीय सहकारी बैंकों द्वारा कुटीर उद्योगों को ऋण प्रदान किया जाता है। सहकारिता के आधार पर लघु औद्योगिक इकाइयों को कई प्रकार की सुविधाएं प्राप्त हो जाती हैं जैसे – सरकार एवं अन्य संस्थाओं से ऋण प्राप्त करने में सुगमता, दुर्लभ कच्चे माल की प्राप्ति में सुविधा, तथा तकनीकी एवं वित्तीय सलाह आदि। सभी राज्यों में राज्य औद्योगिक विकास निगम (एस. आई. डी. सी एस.) की स्थापना की जा चुकी है। राज्य स्तर की वित्तीय विकास एवं विनियोग संस्थाओं ने लघु उद्योगों की वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति की दिशा में उल्लेखनीय कार्य किया है। राज्यों के वित्तीय निगम (एस.एफ.सी.एस.) अपनी कुल वित्तीय सहायता का लगभग 60 प्रतिशत लघु इकाइयों को देते हैं। राज्य के विकास एवं विनियोग निगम लघु औद्योगिक इकाइयों के अंशों एवं ऋण–पत्रों में भी पूंजी लगाते हैं।

राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम की स्थापना 1955 में भारत सरकार द्वारा की गयी। यह निगम उद्योगों को प्रत्यक्ष ऋण नहीं देता फिर भी लघु उद्योगों को किस्तों के आधार पर मशीनों को उधार विक्रय करके राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम उनकी पर्याप्त वित्तीय सहायता करता है। यह निगम 4,000 औद्योगिक इकाइयों को 268 करोड़ रुपयों के मशीन–उपकरण भाड़ा क्रय के आधार पर उपलब्ध करा चुका है। इस निगम से सहायता प्राप्त लघु औद्योगिक इकाइयों में लगभग 6 लाख व्यक्तियों को रोजगार एवं 20,000 करोड़ रुपये मूल्य की वस्तुओं का उत्पादन हो रहा है। रिजर्व बैंक लघु उद्योगों की वित्त पूर्ति में प्रत्यक्ष योगदान देता है। औद्योगिक सहकारिताओं को दिए जाने वाली वित्तीय सहायता के लिए रिजर्व बैंक ऋण की सुविधा देता है तथा उनके अंशों एवं ऋण–पत्रों में पूंजी विनियोग करके उनके वित्तीय साधनों मे वृद्धि करता है। इसके अतिरिक्त रिजर्व बैंक साख गारंटी योजना का संचालन भी करता है। जिसके अंतर्गत लघु उद्योगों का दिए गए ऋणों से होने वाली हानि की पूर्ति की जाती है।

लघु उद्योग विकास संगठन लघु उद्योगों को तकनीकी परामर्श एवं सहायता प्रदान करता है। खादी एवं ग्रामीण उद्योग आयोग ग्रामीण उद्योगों का मार्गदर्शन एवं तकनीकी प्रोत्साहन प्रदान करता है। इसका संगठन सभी राज्यों में फैला हुआ है जिसमें 30 राज्यों के खादी तथा ग्रामीण उद्योग मंडल 1,860 पंजीकृत संस्थाएं तथा लगभग दो लाख गावों में फैले हुए 30,008 औद्योगिक सहकारी केंद्र हैं। कृषि एवं ग्रामीण विकास का राष्ट्रीय बैंक (नाबार्ड) है जिसकी स्थापना जुलाई 1982 में की गयी। नाबार्ड व्यापारिक बैंकों, ग्रामीण बैंकों, राज्य के सहकारी बैंकों को पुनर्वित्त की सुविधाएं देता है जिससे कि ये वित्तीय संस्थाएं लघु उद्योगों एवं ग्रामीण उद्योगों को ऋण प्रदान कर सकें। लघु औद्योगिक क्षेत्र को वित्तीय एवं अन्य सहायता प्रदान करने के क्षेत्र में अब भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक (सिडबी) एक महत्वपूर्ण विकास संगठन बन चुका है।

लघु एवं कुटीर उद्योगों की समस्याएं

लघु एवं कुटीर उद्योगों की सबसे बड़ी समस्या कच्चा माल पर्याप्त मात्रा में नहीं मिल पाना है और यदि उन्हें मिलता भी है तो बड़ी परेशानी के बाद ऊंचे मूल्य चुकाने के बाद। इससे इनकी लागत मूल्य बढ़ जाती है और वे अपने आर्डर का माल समय पर तैयार नहीं कर पाते। दूसरी प्रमुख बाधा वित्तीय सुविधाओं का अभाव है। लघु उद्योगपतियों की पूंजी सीमित होती है। व्यापारिक दर पर निजी स्रोतों से ऋण लेना पड़ता है।

कुटीर एवं लघु उद्योगों की उपयोगिता को बनाये रखने के लिए यह अत्यंत आवश्यक है कि उत्पादन तकनीकी की आधुनिकीकरण किया जाए। पुराने औजारों एवं प्राचीन विधियों से लघु एवं कुटीर उद्योग नवीन डिजाइन की उत्तम वस्तुओं का उत्पादन नहीं कर सकते।

अतः उनकी निर्माण विधि में आधुनिक यंत्रों का उपयोग करके सस्ती दर पर उत्तम किस्म की वस्तुएं शीघ्रता से उत्पादित की जा सकती है। उत्पादित माल के विक्रय के विषय में राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विशिष्ट संगठनों की जरूरत है। लघु उद्योगों के साधन इतने सीमित होते हैं कि वे विस्तृत स्तर पर विज्ञापन व्यवस्थाओं को पूरा नहीं कर सकते। जिन वस्तुओं में आधुनिक मशीनी माल से प्रतियोगिता करनी होती है तब उनके विक्रय की व्यवस्था करना और भी कठिन हो जाता है।

लघु एवं कुटीर उद्योगों के आधुनिकीकरण का उद्देश्य उस समय तक सफल नहीं हो सकता जब तक कि कारीगरों के उचित प्रशिक्षण की व्यवस्था न हो। इसके लिए निरन्तर अनुसंधान करते रहना भी आवश्यक है ताकि उत्पादन के नए–नए तरीकों एवं उत्तम डिजाइनों का समावेश किया जा सके। यातायात सुविधाओं का अभाव, विस्तृत सूचनाओं एवं उचित परामर्श का अभाव आदि विभिन्न प्रकार की कठिनाइयों का भी सामना करना पड़ता है।

लघु एवं कुटीर उद्योगों की उपयोगिता

भारतीय अर्थ–व्यवस्था में लघु एवं कुटीर उद्योगों के महत्व का अनुमान उसकी उपयोगिता से लगाया जा सकता है। भारत में बेरोजगारी की समस्या विकट है। पढ़े–लिखे बेरोजगार युवक बेकारी एवं अर्ध–बेकारी की समस्या से परेशान हैं। गांवों में बेकार लोगों की संख्या बहुत अधिक है। बड़े पैमाने के उद्योग देश में फैले हुए बेरोजगारों को रोजगार नहीं दे सकते। भारतीय कृषि पर जनसंख्या का बोझ पहले से ही अधिक है जिसे कम किए बिना कृषि उद्योगों में कुशलता नहीं आ सकती है। अतः इतनी विशाल जनसंख्या को भरपूर काम देने के लिए यह अनिवार्य हो जाता है कि देश में लघु एवं कुटीर उद्योगों का पर्याप्त विकास किया जाए। भारत में औसतन खेतों का आकार इतना छोटा है कि वह एक किसान परिवार का पालन–पोषण नहीं हो सकता। भारत के कुछ भागों में जहां एक ही फसल होती है वहां कृषकों की दशा और भी खराब है। यदि पशुपालन आदि धंधों का सहारा न मिले तो वह अपना गुजारा भी नहीं कर सकते। अतः कृषि के सहायक धंधों के रूप में लघु एवं कुटीर उद्योगों का विशेष महत्व है। पशुपालन, दुग्ध व्यवसाय, बागवानी, सूत कातना, कपड़ा बुनना, मधुमक्खी पालन आदि ऐसे उद्योग हैं जो सरलता से कृषि के मुख्य धंधों के साथ– साथ अपनाये जा सकते हैं।

कुटीर उद्योगों में श्रमिक अपनी हस्तकला का प्रदर्शन कर सकता है। लघु एवं कुटीर उद्योगों में छोटी मशीनों एवं विद्युत शक्ति का उपयोग करके भी श्रमिक अपने कला एवं प्रतिभा का प्रदर्शन कर सकता है। लघु एवं कुटीर उद्योग पूंजी प्रधान न होकर श्रम प्रधान उद्योग है। कुछ उद्योगों में बहुत कम पूंजी की आवश्यकता होती है जैसे बीड़ी बनाना, रस्सी या टोकरी बनाना आदि। छोटे उद्योग आय एवं सम्पत्ति के केंद्रीकरण को बढ़ावा न देकर उसके विकेंद्रीयकरण को प्रोत्साहित करते हैं। अतः आर्थिक सत्ता के केंद्रीकरण के दोषों को लघु एवं कुटीर उद्योग के आधार पर कम किया जा सकता है तथा राष्ट्रीय आय का न्यायपूर्ण एवं उचित वितरण किया जा सकता है। भारत में लघु एवं कुटीर उद्योगों द्वारा उत्पादित वस्तुओं का निर्यात उत्तरोत्तर बढ़ रहा है। अनेक ऐसी कलात्मक वस्तुएं हैं जो मशीनों से उत्पादित नहीं की जा सकती हैं जैसे – हाथी दांत, संगमरमर, चंदन की लकड़ी आदि पर कलात्मक नमूने, उत्तम किस्म की कढ़ाई, विभिन्न धातुओं पर नक्कशी का काम आदि। इसके लिए हस्त कौशल की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार हथकरघे के उत्तम किस्म के वस्त्र भी कुटीर उद्योगों के ही प्रतीक हैं। देश के कुल निर्यातों में लघु औद्योगिक क्षेत्र का हिस्सा 34 प्रतिशत है।

लघु एवं कुटीर उद्योग अपनी वस्तुओं का उत्पादन करके राष्ट्रीय उत्पादन में योगदान देते हैं। यदि इनके तकनीकी स्तर में सुधार किया जाए एवं बिजली से संचालित मशीनों के उपयोग की सुविधाएं इन्हें प्रदान की जाएं तो लघु उद्योगों की उत्पादकता में सुधार किया जा सकता है और राष्ट्रीय उत्पादन में इनसे और अधिक योगदान की आशा की जा सकती है। आजकल शहरों में बढ़ते हुए मूल्य–स्तर के कारण मध्यमवर्गीय परिवारों को अपना जीवन–स्तर कायम रखना कठिन हो गया है। यदि जापानी ढंग पर कुछ ऐसी सरल प्रणाली अपनायी जाए जिसमें छोटी मशीनों की सहायता से उत्तम किस्म की उपयोगी वस्तुओं का उत्पादन किया जा सके तो लघु एवं कुटीर उद्योग मध्यमवर्गीय परिवारों के लिए अतिरिक्त आय का साधन बन सकते हैं। यदि कालेजों एवं विश्वविद्यालय में भी लघु उद्योगों के आधार पर प्रशिक्षण एवं उत्पादन सुविधाएं प्रदान की जाएं, तो इससे निर्धन विद्यार्थियों को बड़ा लाभ होगा। वे अपने अध्ययन को जारी रखकर उचित प्रशिक्षण प्राप्त करके राष्ट्रीय उत्पादन में अपना महत्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं।

देश के आजाद होने के बाद लघु एवं कुटीर उद्योगों के विकास एवं प्रसार के लिए अनेक प्रकार के सरकारी उपाय किए गए हैं। इन उद्योगों के लिए सरकार द्वारा किए गए विभिन्न उपायों मे उद्योगों को वित्तीय सुविधाएं, तकनीकी सुविधाएं एवं विपणन सुविधाएं प्रदान की गई हैं। जिसके फलस्वरूप अब भारतीय अर्थ–व्यवस्था में लघु क्षेत्र के उद्योगों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण हो गयी है। लघु क्षेत्र के उद्यम एवं साहस का विकास करने के उद्देश्य से अनेक उत्प्रेरणाएं दी जा रही हैं जैसे – करों एवं लाइसेसिंग में छूट, अनुसंधान केंद्र की स्थापना, ग्रामीण औद्योगिक परियोजनाएं, लघु औद्योगिक इकाई से खरीदे गए माल के भुगतान में विलम्ब पर ब्याज की अदायगी, साख गारंटी योजना, सुरक्षा जमा राशि, पंजीकरण शुल्क से मुक्ति तथा आवेदन करने के फार्म आदि का निःशुल्क वितरण आदि। अनेक प्रकार के नवीन सुविधाएं एवं रियायतें प्रदान की गई हैं। आज लघु एवं कुटीर उद्योग क्षेत्र हमारी अर्थ–व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण अंग हो गया है। लघु एवं कुटीर उद्योगों को भविष्य में और विकास करने की आवश्यकता है जिससे कृषि पर लोगों की निर्भरता कम कर उन्हें उद्योग–धंधों में लगाकर प्रति व्यक्ति आय बढ़ाई जा सकती है तथा बेरोजगारी की समस्या से मुक्ति दिलाई जा सकती है। ❑

(लेखक एम.एम.पी.जी. कालेज, कालाकांकर, प्रतापगढ़ के वाणिज्य विभाग के अध्यक्ष हैं)

खादी और हस्तशिल्प
ग्रामीणों की जीवन रेखा

संजय कुमार रोकड़े

भारतीय महापुरुषों का दुर्भाग्य कहा जाय या हमारी बेईमानी। जिन सिद्धांतों का निर्माण उन्होंने भारतीय जनमानस के सामाजिक, आर्थिक विकास के लिए किया था, उनका क्रियान्वयन ईमानदारी से नहीं किया गया।

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने भारत के सत्तर प्रतिशत जनमानस जो कि आज भी गांव में बसता है उसके आर्थिक विकास का विचार दिया था। ग्रामीण विकास के लिए ग्रामीण जनता के सहयोग से आर्थिक नीतियां बनाने के लिए अनेक सुझाव दिए, लेकिन इन सुझावों–नीतियों को क्रियान्वित करने में चूक हुई है। ग्रामीणों के आर्थिक विकास का सबसे सशक्त माध्यम पशुपालन, खेती, लघु कुटीर उद्योग सहित कृषि से संबंधित धंधे रहे। तत्कालीन समय में इन सबसे बढ़कर खादी उद्योग रहा। वर्तमान में खादी की वास्तविक स्थिति से रूबरू होंगे तो कड़वी सच्चाई यह है कि कुल कपड़े के उत्पाद का एक प्रतिशत भी खादी नहीं है, जबकि पिछले पांच सालों से भी अधिक समय से लोकप्रिय बनाने के कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं। स्वतंत्रता के बाद जितनी भी सरकारें सत्तारूढ़ हुई उन्होंने सैद्धांतिक तौर पर खादी के प्रचार–प्रसार के महत्व को स्वीकार किया और खादी से जुड़ी संस्थाओं का विस्तार भी किया। बावजूद इसके खादी का उत्पाद अभी कुल कपड़े के उत्पादन के एक प्रतिशत से भी कम है।

खादी उद्योग की सफलता में कहां चूक हुई? स्वतंत्रता संग्राम से ही खादी व ग्रामीण हस्तशिल्पियों का महत्व समझने के बावजूद स्वतंत्रता के पांच दशक से अधिक समय बीतने के बाद भी उन्हें उचित स्थान क्यों नहीं दे पाए है? इस ज्वलंत प्रश्न की तह में देखेंगे तो स्थितियों की सच्चाई को समझने के लिए देश के सबसे महत्वपूर्ण कपड़ा उद्योग की स्थिति को जानना होगा। सरकारी आंकड़ों के अनुसार लगभग 20 प्रतिशत कपड़े का उत्पादन हथकरघा क्षेत्र में होता है शेष 80 प्रतिशत कपड़े का उत्पादन मिल व पावरलूम क्षेत्र में होता है। जो 20 प्रतिशत उत्पादन हथकरघा क्षेत्र में होता है, उस पर संकट के बादल घिरे रहते हैं। इसका कारण सूत या कच्चे माल की अनुपलब्धता बताई जाती है। गांधीजी का कहना था कि हथकरघे के लिए सूत की उपलब्धि हाथ की कताई या चरखे से होनी चाहिए। अगर गांधी के इस सुझाव पर अमल किया जाता है तो हाथ से बुने कपड़े का उत्पादन एक प्रतिशत से भी कम के स्थान पर 20 प्रतिशत या उससे अधिक हो जाता।

विचार करने का मुद्दा यह है कि हैंडलूम को हाथ से कता या चरखे का सूत क्यों नहीं मिल सका। चरखे के प्रसार का थोड़ा बहुत प्रयास तो जरूर किया गया, लेकिन यह ऊंट के मुंह में जीरा ही साबित हुआ। सरकारें इस दिशा में ईमानदारी से प्रयास करतीं तो देशी कपास की किस्मों को संरक्षण देतीं, पर ऐसा नहीं हुआ स्थिति ठीक विपरीत होती चली गई। यह सच है कि जिस तकनीक से काम होना है, उसके अनुकूल ही कच्चा माल चाहिए। अमरीकी या विदेशी किस्में मिलों में होने वाली कताई के लिए तो उपयुक्त थीं, लेकिन चरखे या हाथ से कताई को देशी किस्मों की आवश्यकता थी। इन देशी किस्मों के बलबूते पर ही शताब्दियों तक गांधी के देश में चरखा चला, कतली चली।

सूत, चरखा, कतली से काते गए सूत से हमारे हाथकरघा बुनकरों ने ऐसा कपड़ा बुना, जिसकी मांग 18वी शताब्दी तक विश्व बाजार में रही। इस कपड़े को खरीदने के लिए विदेशी व्यापारी अपनी जान जोखिम में डालकर सात समंदर पार करके इसे खरीदने आते थे। जब दौर बदला तो ब्रिटेन की औद्योगिक क्रांति में जो कताई और बुनाई की मशीनें आईं उनके लिए आरंभिक दौर में अमरीकी लंबे रेशे की किस्मों की अनुकूलता का ही अधिक ध्यान रखा गया। ऐसा नहीं था कि देशी किस्मों में लंबे रेशे की किस्में नहीं थीं। इनमें अनेक गुण भी थे। यह किस्में हमारी जलवायु के आधार पर आरामदायक और मजबूत वस्त्र देने में सफल साबित हुई। इन किस्मों का दुर्भाग्य कहे या हमारे तत्कालीन और वर्तमान राजनीतिज्ञों की अनभिज्ञता, उन्होंने इसे आर्थिक लाभ का जरिया ही नहीं समझा। चरखे को सैद्धांतिक रूप से तो स्वीकार करते रहे पर व्यावहारिक रूप से उसे बढ़ावा नहीं दिया अगर व्यवहारिक रूप से बढ़ावा देते तो कृषि क्षेत्र में भी वहीं नीतियां बनाते जो हाथ की कताई के अनुकूल होती। सरकारी नीतियों से यह सोच भी निरंतर लुप्त होती जा रही है कि चरखा, हथकरघा रोजगार को बाजार से छीनने से कैसे बचाया जाए। क्या सरकार हथकरघा उद्योगों के लिए ईमानदारी से नीति बना पाएगी? उन लाखों हाथों से छूटते रोजगार को बचा पाएगी। अगर सरकार और उद्योगपति इन हथकरघा कर्मियों के संबंध में सकारात्मक दृष्टिकोण रखें तभी हथकरघा उद्योग के विकास के लिए चलाई जा रही योजनाएं सहायक साबित हो पाएंगी।

हथकरघा कर्मियों के विकास में चलाई गई योजनाओं की असफलता के बाद हस्तशिल्पियों की स्थिति में नजर डालते हैं, तो उनकी स्थिति भी संतोषजनक नहीं है। औद्योगिक विकास के लिए बड़े–बड़े कल कारखाने स्थापित किए गए, लेकिन लक्ष्य आज भी कोसों दूर है। ऊंची तकनीक और मशीनों के आधुनिकीकरण के चलते ग्रामीण हस्तशिल्पियों को बचा पाना मुश्किल हो गया।

(शेष पृष्ठ 31 पर)

डीपीआईपी : गरीबी उन्मूलन की अनूठी परियोजना

डा. सुरेंद्र कटारिया

संभवतः अभी तक ऐसी कोई योजना ग्रामीण निर्धन व्यक्तियों के लिए संचालित नहीं हुई है जिसमें पात्र परिवारों को सरकार की ओर से स्वरोजगार हेतु 90 प्रतिशत राशि अनुदान रूप में दी गई हो। विश्व बैंक की वित्तीय सहायता से राजस्थान, मध्य प्रदेश तथा आंध्र प्रदेश के चयनित तथा निर्धनतम जिलों में संचालित हो रही डीपीआईपी (डिस्ट्रिक्ट पावर्टी इनिशिएटिव्ज प्रोजेक्ट) या जिला गरीबी उन्मूलन परियोजना ऐसी ही एक अनूठी परियोजना है।

वस्तुतः डीपीआईपी के संचालन के पीछे ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार, विश्व बैंक तथा संबंधित राज्य सरकारों का यह मत है कि ग्रामीण क्षेत्रों में निवास कर रहे अति निर्धन परिवारों को उनकी रुचि, कौशल तथा स्थानीय संसाधनों और बाजार के अनुरूप स्वरोजगार का कार्य देकर स्थाई रूप से गरीबी से मुक्ति दिलाई जाए। पूर्व की गरीबी उन्मूलन संबंधी योजनाओं या कार्यक्रमों की विफलता को देखते हुए इस बार यह प्रयास किया गया है कि एकल व्यक्ति सहायता अनुदान प्रदान करने के बजाए निर्धन परिवारों के समूह को सहायता प्रदान की जाए। स्वयं सहायता समूह की अवधारणा पर बनने वाले इन समूहों को डीपीआईपी में समान रुचि समूह (सीआईजी) नाम दिया गया है। यह परियोजना सरकारी तथा गैर–सरकारी संगठनों (जीओ – एनजीओ) के संयुक्त प्रयासों से संचालित की जा रही है। जहां एक ओर राज्य स्तर पर परियोजना प्रबंधन इकाई (एसपीएमयू) तथा जिला स्तर पर जिला परियोजना प्रबंधन इकाई (डीपीएमयू) में सरकारी अधिकारी एवं विशेषज्ञगण निर्देशन, नियंत्रण तथा समन्वय का कार्य करते हैं, वहीं दूसरी ओर संबंधित विकास खंड में चयनित स्वयंसेवी संस्था के अधिकारी एवं कर्मचारी निर्धन परिवारों को एकजुट करने, समूह बनाने तथा उनकी आर्थिक गतिविधि अर्थात उप परियोजना के निर्माण का कार्य कराते हैं। विश्व बैंक की सहायता से राजस्थान राज्य के सात जिलों में निर्माण का कार्य कराते हैं। विश्व बैंक की सहायता से राजस्थान राज्य के सात जिलों में दिनांक 25 जुलाई, 2000 से गरीबी उन्मूलन की एक विशिष्ट परियोजना संचालित की जा रही है। यह परियोजना राज्य के सात निर्धनतम जिलों में चलाई जा रही है और इसकी अवधि 2006 तक है।

राजस्थान में जिला गरीबी उन्मूलन परियोजना बारां, झालावाड, चूरू, राजसमंद, दौसा, टोंक तथा धौलपुर जिलों में संचालित हो रही है। राज्य के सात जिलों के 7,039 गांवों के गरीबों को 84 गैर–सरकारी संस्थाओं के माध्यम से समूह में जोड़ना, उनकी क्षमता का विकास कर सशक्तीकरण करना एवं उन समूहों के माध्यम से गांवों में सामुदायिक ढांचागत, भूमि आधारित एवं सामाजिक सेवाओं एवं आय सृजन गतिविधियों हेतु उप परियोजनाएं स्वीकृत कर उनको गरीबी रेखा से ऊपर उठाना इस परियोजना का मुख्य उद्देश्य है।

डीपीआईपी में नया क्या है?

- यह योजना मात्र लक्ष्य प्राप्त करने पर आधारित न होकर आवश्यकता पर आधारित है।
- डीपीआईपी में किसी प्रकार की औपचारिकता (कागजी खानापूर्ति अथवा प्रमाण पत्र आदि) की कोई आवश्यकता नहीं है।
- यह परियोजना व्यक्ति विशेष के स्थान पर समूह की सहभागिता पर आधारित है।
- डीपीआईपी में राशि सीधे समान रुचि समूह के बैंक खाते में हस्तांतरित की जाती है।
- इस परियोजना के अंतर्गत लाभान्वित समूह की शुरू से ही सहभागिता सुनिश्चित की जाती है। वित्तीय प्रबंधन और कार्य का क्रियान्वयन इत्यादि सभी कार्य समान रुचि समूह स्वयं करता है। इस प्रकार समान रुचि समूह एक खिड़की से धन प्रवाह की तरह कार्य करता है।

डीपीआईपी की क्रियान्विति

इस परियोजना की क्रियान्विति निम्नानुसार होती है :–

- जनता को परियोजना के बारे में विस्तृत जानकारी देना।
- गरीब परिवारों की पहचान करना।
- गरीब परिवारों को समुदाय के रूप में संगठित करना।
- सामूहिक गतिविधि करने के लिए समान रुचि समूह को गतिविधि के चयन में उपलब्ध विकल्प बताना एवं गतिविधि करने के लिए समान रुचि समूह बनाना।
- स्वयं सहायता समूह बनाना। इस परियोजना में स्वयं सहायता समूहों को समान रुचि समूह (सीआईजी) कहा जाता है।
- समान रुचि समूह को गतिविधि के चयन में उपलब्ध विकल्प बताना एवं गतिविधि के चयन में सहायता करना।
- उप परियोजना को स्वीकृत करना एवं समान रुचि समूह को राशि उपलब्ध कराना।
- समान रुचि समूह में दक्षता के लिए प्रशिक्षण आयोजित करना।

समान रुचि समूह (सीआईजी)

समान रुचि समूह किसी एक ही प्रकार के कार्य को संपादित करने के लिए तैयार गरीब परिवारों का समूह है। इसकी सदस्य संख्या कम से कम 10 अधिकतम 20 होनी चाहिए, लेकिन परिस्थिति अनुसार 10 से कम परिवारों का समूह भी लाभ ले सकता है लेकिन 5 परिवार से नीचे का समूह गठन उचित नहीं है।

सदस्यों की पात्रता

- लाभान्वित व्यक्ति गरीब वर्ग का होना चाहिए– अर्थात वह या तो गरीब परिवारों की सूची में सम्मिलित हो अथवा विशेष चयन हेतु निर्धारित मानदंडों की पूर्ति करता हो। यदि कोई व्यक्ति बीपीएल सूची में सम्मिलित नहीं है किंतु ग्रामसभा अनुमोदन करके उसे करीब घोषित करती है तो ऐसा व्यक्ति सीआईजी में सम्मिलित हो सकता है।
- एक समान रुचि समूह में एक परिवार का केवल एक ही सदस्य हो सकता है। यहां परिवार से तात्पर्य पति, पत्नी तथा अविवाहित बच्चों से है (नाभिक परिवार)
- किसी भी समान रुचि समूह में केवल नजदीकी रिश्तेदार नहीं होना चाहिए।
- कोई भी व्यक्ति एक से अधिक समान रुचि समूह का सदस्य, आय सृजन/भूमि आधारित समान रुचि समूह भी हो सकता है यदि अलग–अलग समय पर हो।

कार्यों का विवरण

इस परियोजना के अंतर्गत समान रुचि समूह के द्वारा निम्नलिखित चार प्रकार की गतिविधियां संचालित की जा सकती हैं – (1) आय सृजन गतिविधियां (2) भूमि आधारित गतिविधियां (3) आधारभूत सामुदायिक कार्य (4) सामाजिक सेवाओं से संबंधित गतिविधियां।

श्रेणीवार मुख्य–मुख्य गतिविधियों का विवरण निम्नानुसार है :–

आय सृजन आधारित गतिविधियां

चर्म आधारित उद्योग :– जूता, चप्पल एवं खिलौना बनाना, चमड़ा पकाना एवं रंगाई कार्य; **लकड़ी आधारित** :– फर्नीचर बनाना, खिड़की दरवाजा बनाना, बैल एवं भैसा गाड़ी निर्माण; **लोहा आधारित** :– कृषि उपकरण एवं खिड़की बनाने का कार्य; मधुमक्खी पालन एवं शहद उत्पादन कार्य; आटा चक्की एवं तेल घाणी बाय; **कागज आधारित**:– पत्तल, दौना एवं गिलास निर्माण कार्य; सीमेंट की जाली, पाइप, टंकियों एवं कुओं के फरमे निर्माण कार्य; साबुन या वाशिंग पाउडर बनाना; फल एवं सब्जियों का परिक्षण – अचार बनाना, जैसे जैली, सास, स्क्वेश, कार्डियल एवं शर्बत बनाना तथा डिब्बा बंदी करना; बांस की टोकरी बनाना, अरहर की लकड़ी के टोकरे बनाना; दरी एवं गलीचा बुनाई; धूप, अगरबत्ती एवं मोमबत्ती बनाने का कार्य; कत्था निर्माण कार्य; खस एवं खस से संबंधित उत्पाद; पत्थर कटाई, घिसाई एवं पालिशिंग कार्य; पत्थर जाली, मोटर एवं अन्य नक्कासी कार्य; मिनरल वाटर परियोजना; आटोमोबाइल/स्कूटर/ मोटर साइकिल सर्विस केंद्र; हेयर ड्रेसर/ ब्यूटीपार्लर की दुकान; साइकिल/रिक्शा सर्विस; मोटर/पंप/ इंजन/सर्विस एवं बाइंडिंग का वर्कशाप; ट्रक/ट्रेक्टर/बस/ जीप/सर्विस वर्कशाप; दुग्ध संकलन एवं दुग्ध उत्पाद तैयार करना; मछलीपालन; मुर्गीपालन; सुअर पालन; टायर रिट्रेडिंग; होटल/ढाबा; खनन कार्य; भैंस एवं गाय पालन; बकरी पालन; भेड़ पालन।

भूमि आधारित गतिविधियां

जल संग्रहण विकास; ऐनीकट निर्माण; तालाब निर्माण एवं मरम्मत; सामाजिक वानिकी/नर्सरी विकसित करना; बीहड़ सुधार कार्यक्रम; बंजर भूमि विकास कार्यक्रम; लघु सिंचाई परियोजना – सिंचाई कुएं एवं नलकूप निर्माण; स्प्रिंकलर; ड्रिप इरीगेशन; टांका निर्माण एवं फलों के पेड़ लगाना।

सामुदायिक ढांचागत कार्य

संपर्क सड़क निर्माण; पुलिया निर्माण; खरंजा एवं नाली निर्माण; स्वास्थ्य केंद्र; पेयजल निर्माण कार्य; ऐनीकट निर्माण; सार्वजनिक तालाब निर्माण एवं मरम्मत; पशु विकास केंद्र; चारागाह विकास।

सामाजिक सेवाएं

महिलाकर्मी; दाई प्रशिक्षण; पशु नस्ल सुधार कार्य। अन्य योजनाओं की भांति इस परियोजना में धार्मिक एवं राजनीतिक प्रयोजनों से भवनों का निर्माण नहीं कराया जा सकता है तथा ऐसे नाजुक उपकरण नहीं खरीदे जा सकते हैं जिनका रखरखाव कठिनता से होता हो। परियोजनांतर्गत भूमि की खरीद, करों का भुगतान, सुविधाओं का संचालन या संधारण व्यय तथा निजी संपत्ति का जीर्णोद्वार नहीं करवाया जा सकता है।

इस परियोजना से संबंधित जानकारी गांवों में कार्यरत स्वयंसेवी संस्था एवं उनके द्वारा नियुक्त सामुदायिक सहजकर्ता (सी.एफ.) तथा ब्लाक सहजकर्ता द्वारा प्रदान की जाती है। जिला स्तर पर जिला परियोजना प्रबंधक (डीपीआईपी) का पृथक से कार्यालय स्थापित है जो राज्य स्तरीय राज्य परियोजना प्रबंधन इकाई के निर्देशन में कार्य करता है। ❑

(लेखक इंदिरा गांधी पंचायती राज एवं ग्रामीण विकास संस्थान, जयपुर में एसोसिएट प्रोफेसर हैं।)

(पृष्ठ 29 का शेष) – ## खादी हस्तशिल्प

हमने यह भी नजरअंदाज कर दिया कि जिन देशों में आधुनिक मशीनों का औद्योगीकरण पूरी तरह से छा गया वहां भी बेरोजगारी पर पूरी तरह से काबू नहीं हो पाया। बढ़ते औद्योगीकरण ने विकसित राष्ट्रों की तो चिंता बढ़ाई ही है, बल्कि विकासशील राष्ट्रों के लिए भी चुनौती खड़ी कर दी है। औद्योगीकरण के चलते पर्यावरणीय विनाश तो जड़े जमा चुका है, वहीं हस्तशिल्पियों के पेट पर लात भी मारी है। भारतवर्ष में कुशल श्रमिकों का भंडार है। यहां कुशल कामगारों के हाथों में अनेक कलाकारियां आज भी हैं लेकिन ये अस्तित्व के लिए संघर्षरत हैं।

शहरी जनता तो महानगरों में बढ़ती हस्तशिल्प की दुकानों और इंपोरियम खुलने और उनके द्वारा बनाए गए सामान का विदेशों में निर्यात होने से उन्हें बहुत सफल मानती है। वे यह भी मानते हैं कि शिल्पियों के लिए चलाई जा रही योजनाएं पर्याप्त नहीं है। वास्तव में फैशन की चकाचौंध या कुछ हस्तशिल्पियों के बढ़ते निर्यात पर शिल्पियों के बारे में निश्चित हो जाना बड़ी भूल है। जो लोग यह मानते हैं कि उनकी स्थिति चिंताजनक नहीं है वे यह भूल जाते हैं कि दिन प्रतिदिन गांव, कस्बों में बसे कुम्हार, जुलाहे, बढ़ई, लुहार बेरोजगार होते जा रहे हैं। उजड़ते हुए इस उद्योग पर नजर डालें और देखें तो पाएंगे कि चाहे वह माहेश्वर की साड़ियां हों या विश्व प्रसिद्ध चंदेरी की साड़ियां या फिर बनारसी साड़ियां – उनके बुनने वाले जुलाहे आज मरणासन्न स्थिति में हैं। यही हाल झाबुआ के हस्तशिल्पियों और देशभर के अन्य शिल्पियों का भी है। यदि सरकार सक्रिय हो, इन योजनाओं पर ध्यान दे तो इस उद्योग को विश्व स्तर तक पहुंचाया जा सकता है। ❑

(लेखक स्वतंत्र पत्रकार हैं।)

बंद पड़ी भूमिगत खानों में खेती

डा. ए.के. दुबे

बंद पड़ी भूमिगत खानों की सरकार वास्तविक स्वामी है। इसलिए ऐसी जमीन के निरंतर इस्तेमाल को बढ़ावा देना और खान के बंद हो जाने वाले मज़दूरों को रोजगार मुहैया कराना राज्य की विशेष जिम्मेदारी है। ऐसी खानों का सर्वेक्षण करना, इनकी दशा, उपलब्ध ज़मीन और इनके संभावित इस्तेमाल से जुड़े आंकड़े जमा करना आवश्यक है। खुंभी की खेती, तेल और जल का भंडारण तथा फूलों की खेती ऐसी चीजें हैं, जिनके लिए प्रयोग के तौर पर ऐसी ज़मीन का इस्तेमाल किया जा सकता है। बंद खानों के इस्तेमाल को नियमित करने तथा मजदूरों की सुरक्षा के लिए समुचित नियम बनाने की जरूरत है। अनुसंधान और विकास संस्थाएं इस कार्य में मदद कर सकती हैं। लाभप्रद रोजगार के अवसर और संसाधन पैदा करने के लिए भूमि के निरंतर इस्तेमाल में स्थानीय समाज को भी शामिल किया जा सकता है।

बंद खानों के क्षेत्र में निरंतर इस्तेमाल

खानों को धीरे-धीरे बंद करने से भूमिगत और सतही ढांचा सही बना रहता है। एक भूमिगत खान के बंद हिस्सों में मुख्य सड़क रास्ते, चौराहे, मशीनों के लिए जगह और परिचालन-संबंधी अन्य दूसरी सामग्री यथावत बनी रहती है। ऐसे बंद हिस्सों का मौजूदा खनन कार्य के साथ-साथ अन्य दूसरे उद्देश्यों के लिए भी इस्तेमाल किया जा सकता है। ऐसा करने से खनन व्यवसाय को मदद मिलती है और लोगों को रोजगार मिलता है। साथ ही, भविष्य में छंटनी किए जाने वाले कर्मचारियों को भावी व्यवसाय संबंधी प्रशिक्षण भी मिल सकता है।

स्थायी भूमिगत जगह, बंद पड़ी खान के भूमिगत क्षेत्र का लगभग 15-20 प्रतिशत होती है। अगर इस क्षेत्र को गैर-खनन उद्देश्यों के लिए इस्तेमाल में लाना है, तो इस क्षेत्र को पुख्ता करने के साथ-साथ इसमें रोशनदानों, प्रकाश और जल-निकासी की व्यवस्था भी की जानी चाहिए।

जब तक खाली पड़ी जगह राज्य द्वारा अपने कब्ज़े में न ले ली जाए और इसे अन्य दूसरे कार्यों के लिए मुक्त न कर दिया जाए, यह भूमिगत जगह खान-नियमों के तहत बनी रहती है। इसके बाद इस पर भारतीय खान ब्यूरो की नियामक कार्यप्रणाली का लागू होना जरूरी नहीं होता। इसलिए ऐसी ज़मीन के दूसरी तरह के इस्तेमाल में मज़दूरों की सुरक्षा पर ध्यान देने के लिए किसी उपयुक्त नियामक कार्यप्रणाली का विकास करना जरूरी है।

विकसित देशों में बंद पड़ी खानों में पुनः काम शुरू करने के लिए काफी कुछ किया गया है। इनमें अनेक लाभप्रद उपक्रम चलाए जा रहे हैं, जिनसे समाज को रोजगार और संसाधन जुटाने के अवसर मिल रहे हैं। ऐसी बंद खानों की भूमिगत जगह का इस्तेमाल खुंभी, फूल और जड़ी-बूटियां उगाने, तेल, जल और पेय पदार्थों का भंडारण करने, संग्रहालयों और पर्यटक स्थलों के रूप में इस्तेमाल करने में किया जा रहा है। पेंसिल्वैनिया में वर्दिंगटन-स्थित क्रीकसाइड मशरूम लिमिटेड बंद पड़ी खान के इस्तेमाल का एक उल्लेखनीय उदाहरण है। 1944 में चूने-पत्थर की एक भूमिगत खान में स्थापित यह कंपनी वर्ष में नियमित रूप से लगभग 12,000 टन खुंबी उगाती है, जबकि इसकी पूर्ण क्षमता इस मात्रा के दोगुने से भी अधिक की है। स्वीडन में हार्सबाका में एक फेल्डस्पार खान है, जहां 1948 में तेल का भंडारण शुरू किया गया।

फ्रांस में बंद पड़ी चूने-पत्थर की खानों का एल्कोहलयुक्त और गैर-एल्कोहल पेय पदार्थों के भंडारों के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। ये खानें फ्रांसीसी मदिरा की **मेच्योरिंग** के लिए भी अत्यंत उपयुक्त साबित हुई हैं।

प्रयोग के तौर पर ज़मीन के नीचे नियंत्रित परिस्थितियों में जड़ी-बूटियां और सब्जियां भी उगाई जा चुकी हैं। इस कार्य के अच्छे परिणाम निकले हैं। ग्रीन हाउस पौधों को भी जमीन के भीतर भली-भांति उगाया जा सकता है।

भारत में संभावनाएं

भारत में पिछले कुछ समय में भारत सरकार का ध्यान बंद खानों के मुद्दे की ओर गया है। इसलिए, सरकार ने खानों को बंद करने की प्रक्रिया को नियमित करने के लिए खान-नियमों में संशोधन किए हैं। संशोधित नियमों में उन इलाकों के पुनरुद्धार की व्यवस्था है, जिनमें खनन कार्य पूरा हो चुका है। खान बंद करने की योजनाएं पहले से तैयार करनी होंगी और इन्हें सक्षम अधिकारी से स्वीकृत कराना होगा। इन योजनाओं पर अमल करने के साथ-साथ इस कार्य को पूरा करने के लिए पर्याप्त वित्तीय गारंटी भी देनी होगी। ऐसी खानों में अगर अब कार्य शुरू किया जाए, तो इन संशोधनों के अच्छे परिणाम निकल सकते हैं। लेकिन उन खानों के लिए कोई आशा नहीं है, जो आवश्यक प्रक्रिया अपनाए बगैर पहले ही बंद हो चुकी हैं या छोड़ी जा चुकी हैं।

बंद खानों के बारे में कई संभावनाएं हो सकती हैं। ऐसी खानें स्थानीय आबादी के लिए खतरा बन सकती हैं और अवैध खनन के लिए इस्तेमाल में लाई जा सकती हैं। समझा जाता है कि अनेक बंद खानों को गैर-कानूनी ढंग से चलाकर बड़ी मात्रा में

कोयले का उत्पादन किया जा रहा है।

भूमिगत खानें खुंभी तथा अन्य दूसरी नकदी फसलों की खेती के लिए स्वाभाविक जमीनें हैं। केंद्रीय उत्खनन अनुसंधान संस्थान **(सीएमआरआई)** में प्रयोगात्मक क्यारियों में खुंभी उगाने के परीक्षण किए जा चुके हैं। खुंभी की **आयस्ट** किस्म उगाने की दिशा में अत्यंत उत्साहवर्धक परिणाम मिले हैं। ऐसे प्रयोगों से यह भी साबित हो गया है कि खानों में बड़े पैमाने पर खुंभी की खेती करना अत्यंत लाभप्रद भी है।

देहरादून के निकट बंद हुई मालदेवता और दुर्माला में स्थित पायराइट्स, फॉस्टफेट्स एंड केमिकल्स लिमिटेड की खानों में 15 और 10 कि.मी. लंबी भूमिगत जगह पर खुंभी की खेती की जाएगी। इस क्षेत्र की जलवायु बटन खुंभी उगाने के लिए अत्यंत अच्छी है, जिसकी बाजार में अच्छी कीमत मिलती है। **सीएमआरआई** में किए गए परीक्षणों से पता चला है कि एक वर्गमीटर जगह में पूरे वर्ष में लगभग 50 कि.ग्रा. खुंभी पैदा की जा सकती है। इन खानों में 50,000 वर्ग मीटर जगह ऐसी है, जिसे इस्तेमाल किया जा सकता है और जिस पर प्रतिवर्ष लगभग 2,500 टन खुंभी पैदा की जा सकती है। 25 रुपये के थोक मूल्य पर इस पैदावार से प्रतिवर्ष 12.5 करोड़ रुपये का कारोबार किया जा सकता है।

भूमिगत जगह में नियंत्रित परिस्थितियों में फूलों और सब्जियों की खेती एक आकर्षक व्यवसाय सिद्ध हो सकता है। फूलों की खेती का व्यवसाय भी 35 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि दर पर तेजी से बढ़ रहा है। फूलों और सब्जियों का निर्यात भी किया जा सकता है। इस प्रकार से बंद खानों की भूमिगत जगह स्थानीय आबादी के लिए रोजगार के अच्छे अवसर सुलभ करा सकती है और साथ ही सब्जियों के उत्पादन से क्षेत्र की अर्थव्यवस्था को भी बढ़ावा मिल सकता है, जिसकी काफी जरूरत भी है। बड़ी मात्रा में उत्पादन के लिए प्रोसेसिंग, पैकिंग और परिवहन संबंधी सुविधाओं की जरूरत भी होगी। बंद खानों में मौजूदा बुनियादी सुविधाओं में आवश्यक सुधार करना होगा, ताकि इन्हें उक्त उद्देश्यों के लिए इस्तेमाल में लाया जा सकता है।

क्या करना चाहिए?

इस प्रकार, उपलब्ध भूमिगत जगह का आकलन करने के लिए सर्वेक्षण करने की जरूरत है। इस जगह की थोड़ी बहुत मरम्मत करनी पड़ सकती है, या इसका पुनरुद्धार करना पड़ सकता है। बंद खानों को क्षेत्रवार वर्गीकृत करने के बाद यह पता लगाना चाहिए कि मौजूदा परिस्थितियों में कौन–सी जगह किस कार्य के लिए सर्वाधिक उपयुक्त रहेगी। इसके बाद उद्देश्य विशेष के लिए भूमिगत जगह प्राप्त करने के लिए नए उद्यमियों को बढ़ावा देना अगला काम होगा। वे मज़दूरों की सुरक्षा तथा भावी व्यवसाय के स्वभाव पर नजर रखने के लिए बनाए गए नियामक ढांचे के अंतर्गत काम करने के लिए राज्य के साथ समझौता कर सकते हैं।

राज्य को भी माल के प्रसंस्करण और व्यापार को नियमित करना होगा। यह काम कृषि पर आधारित है, इसलिए इसे स्थानीय जनता द्वारा भलीभांति अपनाया जा सकता है। गैर–सरकारी संगठन तथा स्थानीय समितियां कार्य करने के लिए सर्वोत्तम संगठन सिद्ध हो सकती हैं।

मूल्यवान कृषि उत्पादों के उत्पादन के लिए भूमिगत जगह के इस्तेमाल को भविष्य में बढ़ावा मिल सकता है। इन प्राकृतिक संसाधनों के वास्तविक स्वामी राज्य को इस कार्य को समर्थन देने के लिए आगे आना होगा। बंद पड़ी खानों के संभावित इस्तेमाल का पता लगाने के लिए इनका सर्वेक्षण किया जा सकता है। इस जगह के इस्तेमाल से बंद खानों का पुनरुद्धार होने के साथ–साथ स्थानीय आबादी को रोजगार भी सुलभ होगा। ❑

(लेखक केंद्रीय सड़क अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली में वैज्ञानिक हैं)
साभार : प्रेस सूचना कार्यालय

एम.सी.एल. खानों का सुधार

कोल इंडिया लिमिटेड (सीआईएल) की अधीनस्थ कंपनी, महानदी कोल फील्ड्स लिमिटेड (एमसीएल) ने खुदी हुई खानों को पाटने और जमीन को दोबारा काम लायक बनाने के लिए उचित कदम उठाए हैं। पर्यावरण प्रबंधन योजना और परियोजना रिपोर्ट में इसका उल्लेख है। इस योजना के तहत उन खानों को पाटना शामिल है जहां से कोयला निकालने का काम खत्म हो चुका है। इसके अलावा पटी हुई खानों के क्षेत्रों पर मिट्टी की उपजाऊ परत फैलाना और उसके ऊपर वृक्षारोपण करना तथा जैविक सुधार करना शामिल है।

प्राकृतिक और जैविक सुधार के बीच काफी समय चाहिए ताकि खानों में भरी मिट्टी और कूड़ा कड़कट ठीक से जम सके। वृक्षारोपण का काम सरकारी एजेंसी द्वारा किया जा रहा है, और प्रति हेक्टेयर लगभग 2,500 पौधे लगाए जा चुके हैं।

खानों को भरकर उस जमीन को दोबारा काम लायक बनाने का काम संतोषजनक है। कुल खुदी हुई जमीन जिसे नवंबर 2004 तक दोबारा काम लायक बनाना था, उसका क्षेत्रफल 2,338 हेक्टेयर था, 1,645 हेक्टेयर को प्राकृतिक और तकनीकी रूप से दोबारा काम लायक बनाया जा चुका है और ऐसी 1,336 हेक्टेयर भूमि पर वृक्षारोपण हो चुका है। एमसीएल की शुरुआत से अब तक 37 लाख पौधे लगाए जा चुके हैं।

पचमढ़ी: पर्यटन की गढ़ी

डा. प्रदीप कुमार सिंह, डा. शिव प्रकाश अग्निहोत्री

पारिस्थितिक पर्यटन, सामान्यतः किसी क्षेत्र में अनुकूलित पर्यावरण के अंतर्गत ऐसे पर्यटन विकास से संबंधित है जहां मानव और प्रकृति के मध्य संतुलन स्थापित करते हुए पर्यटन एवं मनोरंजन के कार्य संपन्न किए जाएं। वहां की स्थानीय विशेषताओं एवं संस्कृति को चिरस्थाई रखा जा सके। पर्यटन के माध्यम से ही पर्यटकों में नैतिक बल का विकास होगा, हमारी पर्यटन प्रणाली स्वस्थ रह सकेगी क्योंकि पारिस्थितिक पर्यटन ही वह संतुष्टिपूर्ण अनुभव है जहां प्राकृतिक और सांस्कृतिक विरासत के अक्षुण्ण स्वरूप को सुरक्षित रखा जा सकता है। वास्तव में यह आज की अपरिहार्य आवश्यकता भी है कि हम निश्चल, शांत तथा बेजोड़ पर्वत प्रणालियों के रहस्य को समझें, उनके पर्यावरण पारिस्थितिकीय ह्रास को रोकें और उनके मानव समाज के साथ सामंजस्य स्थापित कर वहां पारिस्थितिक पर्यटन विकसित करें जिससे उन क्षेत्रों में पर्यावरण के अनुकूल गतिविधियां विकसित हो सकें।

अंतर्राष्ट्रीय परिदृश्य में भारतवर्ष एकमात्र ऐसा देश है जिसकी बेजोड़ पर्वत प्रणालियां अपनी सुंदरता, प्राकृतिक विशालता एवं अद्भुत दृश्यावलियों के लिए विश्व विख्यात हैं। भारत की सात (हिमालय, अरावली, विंध्य, सहयाद्रि, पूर्वीघाट, पूर्वी पर्वतमाला, सतपुड़ा) प्रमुख पर्वत श्रेणियों में विंध्य के समानांतर गुजरात से अमरकंटक तक विस्तृत सतपुड़ा श्रेणी अपनी प्राकृतिक भूदृश्यावलियों एवं सांस्कृतिक वैभव के लिए विश्व प्रसिद्ध हैं। सतपुड़ा श्रेणी सात पंक्तियों वाली पर्वतमाला है जिसमें सात मोड़ होने के कारण भी इसे सतपुड़ा कहा जाता है। इस पर्वतमाला की गोद में धूपगढ़ के निकट पचमढ़ी ऐसी पर्वतीय सैरगाह है जो सतपुड़ा की रानी के नाम से विश्व प्रसिद्ध है।

पचमढ़ी शहर जहां सांस्कृतिक दृष्टिकोण से तथा मानव निर्मित पर्यटन की अनेक सुविधाओं के कारण पर्यटकों को अपने वैभवशाली स्वरूप के प्रति आकर्षित करता है वहीं इस शहर का चतुर्दिक भूभाग अत्यंत विस्मयकारी प्राकृतिक भूदृश्यों का सौंदर्यपूर्ण वातावरण पर्यटकों के लिए उपहारस्वरूप पेश करता है। पचमढ़ी शहर क्षेत्र एक ऐसा क्षमतावान पर्यटन स्थल है जिसकी संपूर्ण पर्यटन प्रणाली जैव विविधता, भौतिक दृश्यों, वनभंडारों, मनोरंजन के लक्षित क्षेत्रों, अपनी सांस्कृतिक विरासत एवं एकता की दृष्टिकोण से बेजोड़ हैं।

पचमढ़ी शहर क्षेत्र की जनसंख्या का वितरण एक आर्थिक इकाई के श्रम संसाधन और मनोरंजनात्मक कार्यकलाप के रूप में विद्यमान है। यहां की संस्कृति, निवासियों के मनोरंजनात्मक मांग की सरंचना में गुणात्मक भिन्नता, उत्पादन क्रियाओं में क्षेत्रीय भिन्नता, क्षेत्रीय परंपराएं, मनोरंजनात्मक कार्यकलापों के संगठन के लिए भूमि की उपयुक्तता, अनुकूल एवं आरामदायक पर्यावरण स्थितियां, पर्यटकों को समेकित करने में समर्थ क्षेत्र का आकार, स्थाई मनोरंजनात्मक सुविधाओं के निर्माण के लिए उपयुक्त स्थितियां, प्राकृतिक मनोंरंजनात्मक संसाधन एवं पर्यटन सुविधाओं की स्थितियां, सतपुड़ांचल के पचमढ़ी शहर क्षेत्र में अपना पूरी क्षमता के साथ पर्यटकों को आकर्षित करती हैं। इन्हीं सुविधाजनक स्थितियों ने ही पचमढ़ी शहर क्षेत्र को स्वर्ग के समान इतना सुंदर बना दिया है कि यहां आने वाला हर पर्यटक स्वर्गिक आनंद की अनुभूति करता है।

पचमढ़ी एवं उसका शहर क्षेत्र एक उपयुक्त पर्यटन स्थल है जो प्रथम दृष्टि में पर्यटन संबंधी उन संपूर्ण शर्तों को पूरा करता है जो पर्यटकों, अवकाश का आनंद लेने वाले व्यक्तियों, स्वास्थ्य के लिए अनुकूल स्थानों की तलाश करने वाले बीमार लोगों के लिए आवश्यक होती है। भौतिक स्थितियों की दृष्टिकोण से भी यह क्षेत्र पर्यटन स्थल के रूप में सुदृढ़ है। यह क्षेत्र ऐतिहासिक स्थलों एवं वहां की दुलर्भ संस्कृति को भी एक प्रबल मनोरंजनात्मक संसाधन के रूप में प्रस्तुत करने में समर्थ है। इतिहास में रुचि रखने वाले पर्यटक इस क्षेत्र से निराश होकर नहीं लौट सकते हैं। इस क्षेत्र की जनसंख्या दो रूपों में इस क्षेत्र की सेवा करती है – एक श्रम संसाधन के रूप में तथा दूसरी पर्यटकों को मनोरंजनात्मक सुविधाएं प्रदान करने में संलग्न रहती है। पचमढ़ी शहर क्षेत्र के कुछ ऐसे दृश्य जो विश्व स्तर पर अपने अतुलनीय आकर्षण के लिए विश्व विख्यात हैं, उपर्युक्त कथनों को पूरी तरह से प्रमाणित करने में सक्षम हैं।

"पचमढ़ी" शहर क्षेत्र पूर्णतः पचमढ़ी की भौतिक इकाई है। प्रायद्वीपीय भारत के अग्रभाग के मध्य क्षेत्र के रूप में यह प्रदेश सतपुड़ांचल एवं विंध्यांचल की सम्मिलित विशेषताओं को प्रस्तुत करता है। 22°15'38'' उत्तरी अक्षांश से 22°35'52'' उत्तरी अक्षांश तथा 78°10' पूर्वी देशांतर से 78°34' पूर्वी देशांतर के मध्य स्थित यह क्षेत्र लगभग 1100 वर्ग किमी. में विस्तृत एवं मध्य प्रदेश के जबलपुर मंडल के छिंदवाड़ा जिले एवं भोपाल मंडल के बेतुल एवं होशंगाबाद के अधिकांश क्षेत्र को घेरे हुए है।

भूगर्भिक रूप से यह क्षेत्र अत्यंत ही रुचिकर है तथा गुम्फित भू–गर्भिक सरंचना की संपूर्ण विशेषताओं से युक्त है। क्षेत्र की सरंचना, पचमढ़ी बलुआ पत्थर, डेनवा एवं बागरा कांग्लामरेट, विजौरी एवं मोटुर समूह की चट्टानों, गोंडवाना बलुआ पत्थर के मध्य ज्वालामुखी उद्‌गारों से संबंधित चट्टानों की विविधताओं से युक्त है। यहां की चट्टाने ऊपरी कार्बोनिफरस मेसोजोइक युग एवं जुरैसिक युगों की पुरातनता को प्रदर्शित करती हैं। पचमढ़ी शहर क्षेत्र की जलवायु आरामदायक है। ग्रीष्मकाल में यद्यपि तापक्रम 40° सेग्रे. तक पहुंच जाता है परंतु शीतल हवाओं के चलने से यहां "लू" का प्रकोप नहीं रहता। इसका प्रमुख कारण है पचमढ़ी शहर क्षेत्र की ऊंचाई जो धूपगढ़ की उच्चतम (1352 मीटर) पहाड़ी के रूप में विद्यमान है। शीतकाल में दिसंबर के अंतिम सप्ताह में कभी–कभी तापक्रम 1° सेग्रे. पहुंच जाता है अन्यथा यह 3°–7° सेग्रे. के मध्य बना रहता है। वर्षा मानसून के महीनों में प्रायः 75 इंच की पार कर जाती है। परिणमतः पहाड़ियां साफ–सुथरी एवं हरितिमा से युक्त हो जाती है। क्षेत्र का मृदा पर्यावरण पूर्णतः गोंडवाना एवं ज्वालामुखी चट्टानों से प्रभावित है तथा यहां उपोष्णकटिबंधीय वनों की प्रधानता पाई जाती है। ऐसे जीव–जंतु जैसे विशाल भारतीय गिलहरी, उड़ने वाली गिलहरी, विशाल बाज, जिनके सिर पर सर्प जैसी चोटी है या ऐसे बंदर जो शायद ही भारत के किसी अन्य जंगल में उपलब्ध हों, इस आकर्षक प्रदेश के मोहपाश में बंध कर यहीं रह गएं भौतिक रूप में यह प्रदेश विविध प्रकार की पहाड़ियों से युक्त है जिनके शिखर कहीं चौरस हैं तो कहीं उन्नत, ढाल कहीं उत्तल हैं कहीं अवनत, झुकाव कहीं तीव्र है कहीं अति सामान्य, कहीं सीधे खड़े कगार हैं तो कहीं लंबी दूरी तक फैले हुए अति साधारण पादप क्षेत्र। घाटियों के मध्य फैले अति छोटे मैदान नदियों के किनारे लाल बालू से भरे हुए हैं।

पचमढ़ी शहर क्षेत्र का महत्व

पचमढ़ी शहर क्षेत्र में प्रवेश करते ही ठंडी हवाओं की महक के साथ रंग–बिरंगी तितलियों के झुंड अपनी इंद्रधनुषी छटा से पर्यटकों का स्वागत करने के लिए आतुर रहते हैं। पचमढ़ी शहर क्षेत्र पर्यटकों का वह मनोरम स्थल है जहां मानव निर्मित अधिसंख्य संस्थाओं की सुविधाओं के साथ प्रकृति भी अपने वैभवशाली खजाने को निःसंकोच खोल देती है। यहां पर्यटकों को आकर्षित करने वाली अधिसंख्य संस्थाओं का महत्वपूर्ण स्थान है। इन संस्थाओं में अवकाश बिताने वाले स्थाई घर, स्वास्थ्य लाभ प्रदान करने वाले चिकित्सा केंद्र, मध्य प्रदेश राज्य पर्यटन विकास निगम एवं विशेष क्षेत्र विकास प्राधिकरण के होटल एवं महौल (संख्या में 40 से अधिक तथा वर्तमान की सभी सुविधाओं से युक्त) बगीचे एवं पार्कों को सुंदर बनाने वाली समितियों, गवर्नमेंट आर्नामेंटल गार्डेन, राष्ट्रीय वन्य जीव केंद्र, बोरी वन्य जीव केंद्र, राक गार्डेन, प्राचीन पत्थरों एवं लकड़ियों का संग्रहालय सिदोली, आंतरिक खेल सुविधाओं से युक्त क्लब, गामा रेज आब्जरवेट्री वानिकी संग्रहालय, स्काउटिंग का राष्ट्रीय केंद्र, पर्वतारोहण केंद्र, महर्षि योगी का वेद विज्ञान विश्व विद्या केंद्र, मृगनयनी एक ऐसा स्थान है जहां घायल जंगली जानवरों का इलाज करके उन्हें पुनः जंगल में छोड़ दिया जाता है विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

उपर्यक्त मनोरंजनात्मक सुविधाएं जहां पर्यटकों को पचमढ़ी शहर केंद्र की ओर आकर्षित करती हैं वहीं इस शहर क्षेत्र में विद्यमान प्राकृतिक भूदृश्यों ने मिलकर संपूर्ण क्षेत्र को आकर्षक एवं सुंदर बना दिया है। पचमढ़ी शहर क्षेत्र के असंख्य प्राकृतिक भूदृश्यों ने इसे संवारने का कार्य किया है जिनमें कुछ इतने आकर्षक हैं जो पर्यटकों को वर्ष के प्रत्येक दिन एवं दिन के हर क्षण आकर्षित करते रहते हैं जिनमें धूपगढ़, चौरागढ़, महादेव पहाड़ियों के कगार, भूभ्रंश, जहां डेनवा नदी एक आकर्षक मोड़ लेकर इसी फटी घाटी में बहती है। पचमढ़ी से धूपगढ़ जाते हुए डेनवा खड्ड, पीछे हटते हुए ढाल तीव्र गहरे कटाव वाले घाटी के किनारे के टेढ़–मेढ़े ढाल, कटा–फटा पठार, भव्य झरने जैसे "बी फाल" (150 फुट) अप्सरा बिहार, रजत प्रपात (350 फुट) पावत प्रपात (75 फुट), लिटिल

फाल (7 फुट) डचेज फाल, एक घाटी के भीतर निर्मित दूसरी घाटी, जल गली, नदी जलगर्तिकाएं, चौरागढ़, पहाड़ी के खड़े शैल फलक, घुमावदार नदी घाटियां, छोटे–छोटे टीले, मृदा आपूरित छोटी–छोटी घाटियां, तराशे गए पत्थरों वाले तल, (धूपगढ़ पहाडी के शिखर) तीव्र बहाव वाले छोटे–छोटे नाले, खिसकती नदी वेदिकाएं, जटाशंकर गुफा, महादेव गुफा, पांडव गुफा, हांडी खोह (एक ऐसी खोह जिसके 300 फीट ऊचे खड़े ढाल हैं (भस्मासुर कुण्ड, राम्या कुण्ड, आइरनी जलाशय, सुदर कुंड एवं इतने गहरे गार्ज कि झरनों का जल काला दिखाई देने के साथ इनके सौंदर्य को और बढ़ा देता है।

पंचमढ़ी शहर क्षेत्र के आकर्षक प्राकृतिक दृश्यों में कुछ इतने भव्य हैं कि साक्षात प्रकृति भी यहां अपनी सुंदरता को खोजती हुई दिखाई देती है। इस संदर्भ में जटाशंकर गुफा का उदाहरण सर्वथा उपयुक्त है। इस गुफा तक पहुंचने का रास्ता शिव एवं उनके शत्रु भस्मासुर राक्षस की पगडंडी से होकर जाता है। जंबूद्वीप नदी के स्रोत के रूप में भी विख्यात जटाशंकर गुफा में ऊपर लटकते हुए छोटे चटटानों के कटाव जहां प्रकृति की अमूल्य धरोहर हैं वहीं यहां इतनी शांति रहती है कि मानसिक एवं शारीरिक रूप से थका हुआ व्यक्ति क्षण भर में नवीन ऊर्जा एवं चेतना से युक्त हो जाता है। इसी गुफा में चट्टानों का वह समूह भी है जो सूर्य के आगे बढ़ने के साथ–साथ अपने रंग बदल देता है। चट्टानों के पत्थर हरे से धीरे–धीरे सुनहरे पीले दिखाई देते हैं, जिसका कारण प्रकाश का परावर्तन है। गुप्त गुफा लगभग 30 फीट लंबी, संकरी एवं ऐसी अंधेरी चट्टानी गली है जिसे प्रकृति का आश्चर्य कहा जाता है। इस गुफा में एक साथ एकाकी मानव ही निकल सकता है। रीछगढ़ गुफा भी प्रकृति का आश्चर्य है। रजत प्रपात की झलक ही पर्यटकों को आह्लादित कर देती है। इसके निचले तल को देखना साहसी पर्वतारोहियों के लिए ही संभव है। सतपुड़ा का सर्वोच्च शिखर धूपगढ़ (पचमढ़ी से 12 किमी. दूर) इस पर्यटन क्षेत्र की शोभा में चार लगा देता है। इसी के निकट टीलगढ़ का हंसता पहाड़ भी पर्यटकों के आकर्षण का केंद्र है। धूपगढ़ पहाड़ी के शिखर पर खड़े होकर पंचमढ़ी शहर क्षेत्र के बिखरे सौंदर्य को पर्यटकों के लिए समेट पाना मुश्किल होता है। सूर्य जैसे शिखर से तल की ओर जाने को आगे बढ़ता है आस–पास के बिखरे बादल रंगीन हो जाते हैं और ऐसा लगता है कि जैसे कि कुशल चित्रकार ने क्षितिज के बादलों पर आना सुनहरा ब्रश फेर दिया हो। यहां आने वाला प्रत्येक पर्यटक ऐसा अनुभव करता है जैसे संपूर्ण जंगल रात्रि के लिए अपने निवासियों को शांत विदाई दे रहा हो और स्वयं सूर्य उसका सहयोगी हो। ऐसे आकर्षक एवं भव्य भूदृश्यों के मध्य शाम जैसे–जैसे अंधकार से पृथ्वी को ढंकने के लिए अपनी बाहें फैलाती है पर्यटक का मन उस डूबते सौंदर्य के साथ आह्लादित हो जाता है। सूर्य जैसे ही नीचे जाता है अचानक पर्यटक उस नैसर्गिक छटा के आनंद से बाहर आता है। उसे लगता है कि उसके जीवन में ऐसा कभी अनुभव किया ही नहीं। पर्यटक विचारशून्य हो जाता है और उसे जिस आनंद का अनुभव होता है वास्तव में उसे कोई भाषा बयान नहीं कर सकती, मात्र आंखों से देखकर इसे अंदर से अनुभव किया जा सकता है।

पचमढ़ी शहर क्षेत्र में विकसित पर्यटन प्रक्रियाओं से बढ़ता पारिस्थितिक असंतुलन

पचमढ़ी शहर क्षेत्र की पर्यटन प्रणाली अति विकास के नाम पर दुष्प्रभावित हो रही है। यहां आने वाले पर्यटकों द्वारा विभिन्न पर्यटन प्रक्रियाओं (ट्रैकिंग, जैव पर्यवेक्षण), वन्यजीव अभयारण्यों की यात्राएं आदि तथा उन्हें सुविधाजनक बनाने के लिए तदनुरूप विकास गतिविधियां जिनमें आवास, खनन, संचार एवं परिवहन के कारण इस क्षेत्र का अनछुआ आकर्षण मानव बर्बरता से दुष्प्रभावित हो रहा है। कतिपय ऐसे समूह ट्रैकिंग के लिए उन रास्तों से स्वीकृत किये जा रहे हैं जो हमारी वनस्पति एवं जीव–जंतुओं के शत्रु साबित हो रहे हैं तथा इस प्रक्रिया से भूस्खलन एवं मृदा अपरदन को बढ़ावा मिल रहा है। वर्तमान समय में यहां पर्यटन सुविधाओं को विकसित करने के नाम पर सीमेंट एवं कंक्रीट के बढ़ते जंगलों ने प्राकृतिक जंगलों का विनाश के कगार पर खड़ा कर दिया है और ये जंगल लकड़ी के खानों की शोभा बनते जा रहे हैं। वन विनाश के कारण मृदा अपरदन एवं भूस्खलन बढ़ने से निचली घाटियां उथली हो रही हैं जिससे बाढ़ की समस्या गंभीर हो गयी है। प्राकृतिक सौंदर्य के प्रतीक विभिन्न गुफाओं के जल स्रोत सूखते जा रहे हैं। शीत ऋतु की ठंडक में भी कमी आई है। बस्तियों की वृद्धि से गंदे नालों की संख्या में भी वृद्धि हुई है तथा पर्यटकों द्वारा उत्पन्न ठोस अपशिष्टों के निस्तारण की समस्या भी दिन–प्रतिदिन गंभीर होती जा रही है। सारांशतः प्रकृति की इस खूबसूरत विश्राम स्थलों में भी अनियन्त्रित भौतिकवाद की परंपरा हावी हो रही है जो निश्चित ही अति पर्यटन का प्रतिफल है।

निष्कर्ष

पारिस्थितिक पर्यटन उस संतुष्टि का द्योतक है जिसमें प्राकृतिक संतुलन को बनाये रखते हुए पर्यटन संबंधी कार्य संपन्न किये जा सकें तथा वहां की सांस्कृतिक विरासत को सुरक्षित रखते हुए आर्थिक विकास के ऐसे अवसर उपलब्ध हों जो अनियन्त्रितवाद से अछूते रह सकें। पारिस्थितिक पर्यटन से पर्यावरण विषयक नैतिकता का विकास होता है और पर्यटक भावात्मक रूप से संतुष्ट होते हैं तथा स्थानीय समुदायों को अधिकार प्राप्त होने के साथ उनका आर्थिक उन्नयन भी होता है। भारत में मनोरंजन, उसके विविध आयाम तथा पर्यटन का इतिहास इस बात का साक्षी है कि "पचमढ़ी शहर क्षेत्र" का ऐसा अकेला पर्यटन स्थल है जिसकी पर्यटन प्रणाली बेजोड़ एवं पूर्णतः प्राकृतिक है। प्रकृति स्वयं अपनी पूर्ण चुंबकीय क्षमता के साथ यहां आने वाले पर्यटकों को आकर्षित करती रहती है। परंतु आज यह क्षेत्र भी अनियन्त्रित भौतिकवाद की चपेट में अपने सौंदर्य को खोता जा रहा है। विभिन्न पर्यटन प्रक्रियाओं के कारण यहां वह सब कुछ घटित हो रहा है जो पारिस्थितिक व्यवस्थाओं के अनुरूप नहीं है। अतः इसके प्राकृतिक सौंदर्य एवं वैभवशाली संस्कृति को बचाये रखने के लिए पारिस्थितिक पर्यटन सबसे सुरक्षित विकल्प होगा। पारिस्थितिक पर्यटन प्रणाली के द्वारा ही पचमढ़ी शहर क्षेत्र का यह विशेषण– वरडेंट ज्वैल, क्वीन आफ सतपुड़ा, ट्रैकर्स पैराडाइज एवं समर कैपिटल उसके पास सुरक्षित रह सकते हैं और पचमढ़ी शहर क्षेत्र उस आश्चर्य तथा चमत्कार को दुनिया के समक्ष पेश कर सकेगा जिसे शांति, सुंदरता, संयम एवं सभ्यता तथा वैभवशाली संस्कृतियों की विशिष्टताओं का भारत कहते हैं। ❑

(लेखक म.मा.पी.जी. कालेज, कालाकांकर, प्रतापगढ़ (उ.प्र.) में वरिष्ठ प्रवक्ता तथा रीडर एवं अध्यक्ष हैं)

राजस्थान का पर्यटन उद्योग – एक नजर

डा. रवि कुमार दाधीच

राजस्थान अपनी कला और हस्तकला में भारत का एक सम्पन्न राज्य माना जाता है। इसका इतिहास इसकी कलाओं और हस्तकलाओं से भरा पड़ा है। ये पर्यटकों और विषय विशेषज्ञों के लिए एक अमूल्य धरोहर है। यहां के चमत्कारिक एवं भव्य किलों तथा उच्च शिल्पकलाओं से परिपूर्ण मन्दिरों को देखकर विदेशी पर्यटक आज भी चकित रह जाते हैं। यह प्रदेश न केवल मनोरम प्राकृतिक दृश्यावली, बल्कि भित्ति चित्रों, वास्तुशिल्प, रंग–बिरंगे मेलों और उत्सवों तथा स्वर्णिम बालू के स्तूपों के कारण देशी–विदेशी पर्यटकों के लिए आकर्षण का केन्द्र बना हुआ है। राजस्थान भारत के क्षेत्रफल की दृष्टि से पहला बड़ा राज्य है जो कि 342214 वर्ग कि.मी. में फैला हुआ है। यह भारत के उत्तरी पश्चिम भाग में 23°3 से 30°12 उत्तरी अक्षांश और 69°30 से 78°17 पूर्व देशान्तरों के मध्य स्थित है।

वर्तमान में यहां का पर्यटन उद्योग मुख्यतः दो भागों में विभाजित है। 'पर्यटन कला संस्कृति विभाग' पर्यटन स्थलों के विकास, नये स्थलों की खोज, प्रचार–प्रसार, पर्यटकों को संगीत एवं यहां की लोक–कलाओं और गीतों से परिचित करवाने के लिए मेलों–त्योहारों का आयोजन करने का कार्य करता है। वहीं दूसरी ओर पर्यटकों को आवास, परिवहन सुविधाएं उपलब्ध करवाने का कार्य 'राजस्थान पर्यटन विकास निगम' द्वारा किया जाता है। भारत में प्रतिवर्ष आने वाले कुल 26.20 लाख विदेशी पर्यटकों में से 6.23 लाख पर्यटक राजस्थान आते हैं। राज्य सरकार ने पर्यटन व्यवसाय की विपुल संभावनाओं को दृष्टिगत रखते हुए इसे विशिष्ट उद्योग का दर्जा प्रदान किया है।

प्रमुख पर्यटक स्थल

राज्य में देलवाड़ा, नाथद्वारा, रणकपुर, परशुराम महादेव, राणीसती, अजमेर दरगाह, पुष्कर जैसे तीर्थ स्थलों की श्रृंखला बनी हुई है,

वहीं दूसरी ओर केवलादेव, रणथम्भौर, उदयपुर, माउण्ट आबू, सारिस्का राष्ट्रीय मरु उद्यान, सीतामाता अभ्यारण्य, कुम्भलगढ़ अभ्यारण्य जैसे एक से बढ़कर एक नैसर्गिक और रमणीक क्षेत्र भी हैं। इसके अलावा जोधपुर, बीकानेर, जैसलमेर, शेखावटी की विशाल मरुभूमि भी देशी–विदेशी पर्यटकों को मंत्रमुग्ध करती है।

वर्तमान स्थिति

प्रकृति ने राजस्थान को विषमता के साथ–साथ विविधता भी प्रदान की है और वह सब कुछ दिया है, जो देश के अन्य भागों में सहजता से उपलब्ध नहीं है। सर्वश्रेष्ठ भौगोलिक स्थिति एवं समृद्ध परंपरा के कारण यह प्रदेश अन्य प्रदेशों की तुलना में पर्यटन की दृष्टि से बेहतर स्थिति में है। आज करीब 1.5 लाख लोगों को प्रत्यक्ष और 3.5 लाख लोगों को अप्रत्यक्ष रोजगार सुलभ कराने वाला पर्यटन उद्योग यहां धीरे–धीरे जन उद्योग के रूप में स्थापित हो रहा है। वर्ष 2001–2002 की वार्षिक योजना में राज्य सरकार ने पर्यटन विकास के लिए प्रस्तावित बजट को 3 करोड़ रुपये से बढ़ाकर 10 करोड़ रुपये कर दिया। वर्ष 2002–03 की वार्षिक योजना में पर्यटन उद्योग को सर्वोच्च प्राथमिकता वाला क्षेत्र मानकर राज्य सरकार ने कुल 50 करोड़ रुपये का प्रावधान किया। 10वीं पंचवर्षीय योजना के लिए राज्य में पर्यटन विकास हेतु 147 करोड़ 50 लाख रुपये का प्रावधान किया गया है। ग्यारहवें वित्त आयोग की सिफारिशों के अनुसार राजस्थान को स्मारकों के संरक्षण हेतु 10 करोड़ रुपये मिलने की संभावना है, वहीं दूसरी ओर एशियन डेवलपमेन्ट बैंक की योजना के अंतर्गत सौन्दयीकरण तथा उनसे आधारिक संरचना के विकास हेतु 600 करोड़ रुपये प्राप्त होने की आशा है।

वर्तमान में राजस्थान देश का पहला राज्य है, जहां विद्यालय स्तर पर 'सांस्कृतिक धरोहर सेवा वाहिनी योजना, को लागू किया गया है। इसके साथ ही पर्यटन विकास को गति देने के उद्देश्य से निजी उद्यमियों के सहयोग से 'हेरिटेज होटल योजना' को भी संचालित किया गया है। प्रदेश में ग्रामीण स्तर पर पर्यटन को बढ़ावा देने हेतु 'आदर्श पर्यटन गांव योजना' का संचालन किया जा रहा है। 'शाही रेलगाड़ी' पैकेज टूर में प्रदेश के प्रमुख पर्यटन स्थलों को जोड़ने के कारण विश्वस्तर पर निरन्तर राज्य की लोकप्रियता में बढ़ोतरी हो रही है। इन सब के परिणामस्वरूप राजस्थान भ्रमण हेतु आने वाले पर्यटकों की संख्या में निरन्तर तेजी से वृद्धि हो रही है।

राज्य में पर्यटन स्थलों को विकसित करने के लिए गए नित प्रयोगों ने स्वदेशी पर्यटकों को अपनी ओर आकर्षित करने में सफलता प्राप्त की है, किन्तु विदेशी पर्यटकों की आवक वर्ष 2002 में निराशाजनक रही क्योंकि 11 सितम्बर 2002 एवं 13 दिसम्बर 2002 में भारत–पाक सीमा पर तनाव और गुजरात के दंगों ने इसे प्रभावित किया। वर्ष 2002 में सर्वाधिक विदेशी पर्यटक उदयपुर स्वदेशी पर्यटक माउण्ट आबू आए। राज्य में विदेशों से आने वाले पर्यटकों में मुख्य रूप से फ्रांस, इंग्लैण्ड, अमेरिका, जर्मनी, इटली, स्पेन, इजराइल, आस्ट्रेलिया, स्विट्जरलैण्ड आदि राष्ट्रों के हैं। स्वदेशी पर्यटक अधिकांश गुजरात, मुम्बई, कोलकाता, एवं अन्य राज्यों में राजस्थान भ्रमण के लिए बड़ी संख्या में आते हैं।

पर्यटन उद्योग के समक्ष चुनौतियां

लोक कलाओं तथा प्राकृतिक सौन्दर्य से युक्त राजस्थान में पर्यटन विकास की प्रबल संभावनाएं विद्यमान हैं, किन्तु पर्यटन तथा इससें सबंधित अन्य क्षेत्रों की, अनेक संगठनात्मक एवं सरंचनात्मक बाधाओं तथा चुनौतियों की विद्यमानता के कारण यह प्रदेश विश्व पर्यटन की तुलना में अपेक्षित प्रगति नहीं कर पाया है। अन्य प्रमुख कारण हैं –

- सुविचारित पर्यटन विकास की दीर्घकालीन योजना और आक्रामक रणनीति का अभाव।
- पर्यटन स्थलों पर आधारभूत सुविधाओं की कमी तथा अच्छे पहुंच मार्गों का अभाव। यहां पर्यटकों की यात्रा के लिए सड़क और रेल परिवहन की पर्याप्त सुविधाएं उपलब्ध नहीं हैं राज्य का एक भी हवाई अड्डा उड़ानों के योग्य नहीं है।
- पर्यटन स्थलों के विकास हेतु समुचित आर्थिक संसाधनों का अभाव है। जिसके परिणामस्वरूप राज्य के अनेक प्राचीन स्मारक जर्जर तथा जीर्ण–शीर्ण अवस्था में पहुंच गये हैं। राजस्थान की 'ओपन आर्ट गैलेरी' तथा 'फ्रेस्कोलैण्ड' के नाम से विख्यात शेखावाटी अंचल में स्थित हवेलियों के चित्ताकर्षक भित्तिचित्र भी अपनी मौलिकता खो रहे हैं।
- पर्यटन से संबंधित विभिन्न सरकारी तथा गैर–सरकारी एजेंसियों के मध्य उचित समन्वय का अभाव।
- राज्य के अनेक पर्यटन स्थलों पर प्रशिक्षित और अनुभवी गाइड्स की कमी बनी हुई है, और पर्यटन स्थलों से संबंधित सम्पूर्ण जानकारी देने के लिए 'पर्यटन सूचना केन्द्रों' का पर्याप्त विकास नहीं हुआ है।
- पर्यटन स्थलों पर सुरक्षा व्यवस्था सुदृढ़ नहीं होने के कारण विदेशी पर्यटकों के साथ धोखाधड़ी एवं चोरी की वारदातें बढ़ती जा रही हैं। इससे पर्यटकों में हमेशा भय का वातावरण बना रहता है।
- पर्यटन पर स्वच्छता एवं सफाई के अभाव की वजह से, जिससे प्रमुख पर्यटन स्थलों के आसपास बढ़ती गंदगी पर्यटकों के लिए गम्भीर समस्या बनती जा रही है। इससे यहां आने वाले पर्यटकों के मन में हमेशा बीमार होने का खतरा बना रहता है।
- राज्य में ग्रामीण पर्यटन की अवधारणा भी सांस्कृतिक एवं वैचारिक प्रदूषण के रूप में एक प्रमुख चुनौती बनती जा रही है।

समाधान

वैश्वीकरण के इस दौर में पर्यटन उद्योग, जिन चुनौतियों का सामना कर रहा है, उनसे इसे बचाये रखने तथा सरंक्षित करने की राज्य सरकार की पहली प्राथमिकता है, क्योंकि यह क्षेत्र राज्य की आर्थिक अर्थव्यवस्था का प्रमुख स्तम्भ बनता जा रहा है। पर्यटन उद्योग के विकास के लिए राज्य सरकार एवं निजी क्षेत्र बहुत प्रयास कर रहे हैं। राज्य सरकार राजस्थान की नवीन पर्यटन नीति की घोषणा कर चुकी है। जिसमें पर्यटन विकास के लिए विभिन्न आकर्षक योजनाओं को शामिल गया है, लेकिन राज्य के पर्यटन विकास हेतु अभी बहुत कुछ किया जाना शेष है, इसके लिए निम्नांकित प्रयास किए जाने चाहिए।

- पर्यटन स्थलों पर स्वस्थ वातावरण तथा बुनियादी सुविधाओं (अच्छी सड़कों का निर्माण, विद्युत आपूर्ति, जल व्यवस्था, किफायती तथा आरामदायक परिवहन सुविधा की उपलब्धता) का विकास किया जाना चाहिए।
- पर्यटन विकास के व्यावहारिक तथ्यों के मद्देनजर रखते हुए राज्य की दीर्घकालीन पर्यटन नीति का निर्माण किया जाना चाहिए जो सुस्पष्ट होनी चाहिए।
- गांवों में जीवित राज्य की संस्कृति की महान् परम्पराओं, महोत्सवों, मेलों आदि का भव्य रूप से प्रचार–प्रसार पर्यटन के लिहाज से किया जाना चाहिए।
- राज्य के नवीन पर्यटन स्थलों का चयन कर उन्हें विकसित किया जाना चाहिए, जिससे विदेशी एवं स्वदेशी पर्यटक अधिक संख्या में आकर्षित हो सकें।
- पर्यटन स्थलों के स्थानीय व्यक्तियों को पर्यटन कार्य से जोड़ा जाये, साथ ही इस कार्य हेतु "पेइंग गेस्ट योजना" का प्रचार–प्रसार किया जाये।
- राज्य सरकार द्वारा अब तक स्वदेशी एवं घरेलू पर्यटकों की उपेक्षा की जाती रही है। अतः राज्य में विदेशी पर्यटकों के साथ–साथ स्वदेशी पर्यटकों का भी आदर–सम्मान एवं सत्कार प्रदान किया जाना चाहिए।
- पर्यटन संबंधी क्रियाओं (होटलों का संचालन, परिवहन, टूर पैकेज) में निजी क्षेत्र की भागीदारी बढ़ानी चाहिए तथा सरकारी हस्तक्षेप को न्यूनतम किया जाना चाहिए।
- राज्य के पर्यटन स्थलों पर होने वाली धोखाधड़ी, लूटपाट, ठगी की घटनाओं पर कठोरतापूर्वक अंकुश लगाना चाहिए तथा इस तरह की घटनाओं की स्पष्ट जवाबदेही, स्थानीय सरकारी अधिकारियों द्वारा तय की जानी चाहिए।
- राज्य के पर्यटन स्थलों को स्वच्छ और पर्यावरण को प्रदूषित रहित बनाना अति आवश्यक है, जिससे यहां आने वाले विदेशी पर्यटकों को किसी भी प्रकार की बीमारी होने का भय नहीं रहे। वे यहां के पर्यटक स्थलों का भरपूर आनन्द ले सकें। इससे राज्य के पर्यटन उद्योग की साख अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर बढ़ेगी।

राज्य के पर्यटन उद्योग को वर्तमान एवं भावी चुनौतियों का सामना करने के लिए जहां एक ओर प्रभावोत्पादक व्यूह रचना का निर्माण अति आवश्यक है वहीं दूसरी ओर अति संवदेनशील पर्यावरण और पुरातन संस्कृति और प्राकृतिक संसाधनों को सहेजने एवं संवारने की आवश्यकता है। इसके अलावा राज्य में पर्यटन विकास हेतु व्यावहारिक तथा दीर्घकालीन नीति के निर्माण की आवश्यकता है, जिससे राज्य के पर्यटन उद्योग को पल्लवित और पुष्पित किया जा सके। ❑

(लेखक राजकीय स्नातकोत्तर महा., पाली के व्यव. प्रशा. विभाग में वरिष्ठ संकाय सदस्य हैं।

रेशम कीटपालन, आमदनी का साधन

ममता भारती

यदि नए तरीके अपनाकर बेहतर ढंग से रेशम के कीड़े पाले जाएं तो अच्छी आमदनी हो सकती है। निजी धंधा शुरू करने वालों के लिए यह एक बढ़िया रोजगार है बशर्ते काम शुरू करने से पहले इस बारे में पूरी जानकारी हासिल कर ली जाए।

सबसे ज्यादा रेशम उत्पादन करने में हमारा देश दुनिया भर में दूसरे नंबर पर आ गया है। भारत में मलबरी, दूरी, टसर तथा मूंगा इन चारों किस्मों का रेशम बनता है। देश के विशाल रेशम उद्योग में 64 लाख लोगों को रोजगार मिला हुआ है। सन् 2001 में 1763.84 करोड़ रुपये कीमत का रेशम दूसरे देशों को निर्यात किया गया था।

रेशमी कपड़ों की मांग दुनियाभर में बढ़ रही है। इसलिए बढ़िया क्वालिटी के रेशम का कारोबार आगे और भी तेजी के साथ बढ़ेगा। आवश्यकता इस क्षेत्र से लाभ उठाने की है यानी कि आगे कदम बढ़ाने की है।

फिलहाल हमारे देश में रेशम की सालाना मांग करीब 20 हजार टन की है। नए सुंदर, हवादार रेशम के कपड़े बाजार में आ जाने की वजह से रेशम की मांग में कई गुना बढ़ोत्तरी होने की उम्मीद है।

पूरी दुनिया में पहली बार हवादार रेशमी कपड़ों की खोज कालेज आफ टेक्नोलॉजी, टेयंबटूर ने स्विट्जरलैंड की मदद से भारत में की है। रेशमी धागों को नए ढंग से ब्लीच करने जैसी फायदेमंद जानकारियां रेशम कीट पालने वालों की तकदीर बदल सकती हैं। बशर्ते उनका इस्तेमाल किया जाए।

शहतूत की पत्तियों पर रेशम के कीड़े पाले जाते हैं उनसे कोया मिलता है, जिसे सुखाकर कोये की रीलिंग की जाती है तथा रेशम का

धागा निकाला जाता है। कुछ लोग शहतूत के अलावा अर्जुन, साल, बेर, अरंडी तथा अन्य पेड़ों के पत्तों पर भी रेशम देने वाले कीड़े पालते हैं। किंतु शहतूत के पत्ते खाने वाले कीड़े अच्छी क्वालिटी का ज्यादा रेशम देते हैं।

एक मादा कीट 600 अंडे तक देती है। अंडों से निकले नन्हे कीटों को पालने में बहुत सावधानी बरतने की जरूरत होती है। उन्हें मुलायम पत्तियों पर रखा जाता है। कटी पत्ती खाकर ये कीड़े बहुत जल्दी बढ़ते हैं।

रेशम का एक कीड़ा अपने जीवन काल में करीब 30 ग्राम शहतूत की पत्तियां खा लेता है। कोया बनने से पहले कीड़ा पत्तियां खानी बंद कर देता है। 48 से 72 घंटे में कोया बन जाता है। इसे ककून भी कहते हैं। रेशम कीट इसमें बंद हो जाता है। उबलते हुए पानी में डालने से कीड़े भर जाते हैं तथा रेशम के मुलायम धागों को आसानी से अलग कर लिया जाता है। एक कीड़ा अमूमन 1500 मीटर लंबा रेशमी धागा बनाता है।

दूसरे धंधों के मुकाबले में रेशम के कीड़े पालना ज्यादा फायदेमंद है। इसमें कम लागत से पूरे साल आमदनी होती रहती है। रेशम कीट पालन के साथ–साथ यदि धागा बनाने की रीलिंग भी की जाए तो मुनाफा और भी बढ़ जाता है। रेशमी धागे से कपड़ा बुनने का काम करने से फायदा और भी बढ़ जाता है।

ककून के मुकबले में रेशमी धागे का भाव अधिक रहता है। रेशम कीट पालने की तकनीकी जानकारी, कीड़े तथा अन्य सुविधाओं के लिए अपने जिले के रेशम विकास विभाग से संपर्क किया जा सकता है। इस काम को शुरू करने से पहले नई और पूरी जानकारी

बेहद जरूरी है। हमारे देश में गरीबी से ज्यादा उदासीनता भरी है, अतः रेशम के कीड़े पालने वाले ज्यादातर लोग जरूरी बातों पर ध्यान नहीं देते इसी वजह से उन्हें नुकसान उठाना पड़ता है।

पेवरीन, ग्रोसरिक, मुस्कार्डिन तथा फ्लैचरी रोगों की वजह से रेशम कीटों में सुस्ती आ जाती है तथा वे मरने लगते हैं; जानकारों का कहना है कि दो फीसदी फार्मेलीन के घोल में कीड़ों के अंडों को डुबोकर साफ पानी से धो लेना चाहिए।

रेशम के कीड़े पालने की जगह, ट्रे तथा बाकी सभी उपकरण जीवाणु रहित कर लेने चाहिए। जगह साफ सुथरी और हवादार हो तथा वहां सर्दी, गर्मी, बरसात बहुत ज्यादा नहीं रहनी चाहिए। खिड़की दरवाजे जालीदार हों तथा कमरों की साफ–सफाई रोज की जाए। ध्यान रखें कि ककून फटने की नौबत न आए वरना धागे टूटकर बेकार हो जाएंगे।

हमारे देश के 12 राज्यों में रेशम विकास निदेशालय काम कर रहे हैं। राष्ट्रीय स्तर पर एक रेशम विकास बोर्ड है जो केंद्रीय कपड़ा मंत्रालय, भारत सरकार के अधीन काम करता है। मुंबई (महाराष्ट्र) में सिल्क एंड आर्ट सिल्क मिल्स रिसर्च एसोसिएशन है। यह संस्था रेशम के बारे में खोजबीन करने का काम करती है। इसके अलावा मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, हिमाचल प्रदेश तथा बिहार में भी रेशम अनुसंधान के क्षेत्रीय केंद्र काम कर रहे हैं।

वैज्ञानिक तरीकों से रेशम के कीड़े पालने को सेरीकल्चर कहते हैं। इसकी शुरुआत सबसे पहले चीन से हुई थी। धीरे–धीरे यह काम दुनिया के दूसरे देशों में भी शुरू हो गया। हमारे देश में वर्ष 1989–90 में रेशम उत्पादन को बढ़ावा देने के लिए राष्ट्रीय स्तर पर एक परियोजना शुरू की गई थी। इसके तहत रेशम कीट पालन के लिए कर्ज तथा छूट आदि सुविधाएं दी जाती हैं। अभी तक हमारे देश में सबसे ज्यादा रेशम कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु, जम्मू–कश्मीर तथा पश्चिमी बंगाल आदि राज्यों में ही तैयार किया जाता था। अब उत्तर भारत में भी रेशम कीट पालन का धंधा बहुत तेजी के साथ फैल रहा है। इस काम में तरक्की की बहुत गुंजाइश है बशर्ते मेहनत के साथ–साथ थोड़ा दिमाग भी लगाया जाए।

रामनगरम, सूरत श्रीनगर, मुंबई, बंगलौर, मैसूर, मुर्शिदाबाद, बांकुरा, भागलपुर, ग्वालियर वाराणसी, रांची तथा चाइबासा जैसे अनेक शहरों में रेशम की पुरानी मंडिया हैं। इन बाजारों में कोकून तथा रेशमी धागे की खरीद–फरोख्त बड़े पैमाने पर की जाती है।

सिल्क की साड़ियां, कुर्ते, पाजामे और अन्य नई–नई पोशाकों में रेशमी कपड़े का इस्तेमाल अब बहुत बड़े पैमाने पर किया जा रहा है। इसलिए बिक्री की कहीं कोई समस्या नहीं है बशर्ते रेशम की क्वालिटी बढ़िया हो तथा शहतूत की भरपूर पत्तियों का पूरा पुख्ता इंतजाम हो।

सावधानियां

जब कीड़े अपनी केंचुली बदलें तो उन्हें कतई न छेड़ें। उस सयम उन्हें खाने की पत्तियां भी नहीं देनी चाहिए। जब कीड़े ककून के लिए तैयार हों तो उसे बार–बार न छेड़ें। एक वर्ग फीट में 40–50 से ज्यादा कीड़े नहीं रखने चाहिए। कीड़े और ककून दोनों को छिपकली, चूहे, गिलहरी, चींटी और चिड़ियों से बचाएं। ककून बनने के बाद एक सप्ताह में माल बिक्री के लिए तैयार हो जाता है अतः ज्यादा देरी न करें। ❑

(लेखिका स्वतंत्र पत्रकार हैं।)

स्वसहायता समूहों के माध्यम से धान मिलिंग

एक अभिनव कदम

डा. गर्जेंद्र कुमार

जिला शहडोल एवं नवगठित जिला अनूपपुर दोनों ही जिले धान बाहुल्य वाले क्षेत्र हैं। यहां के कृषकों को अपने धान मिलिंग के लिए नजदीकी जिले कटनी एवं पड़ोसी राज्य छत्तीसगढ़ में जाना पड़ता है, जिसमें काफी समय और धन का व्यय होता है, शहडोल और अनूपपुर आदिवासी बाहुल्य वाले जिले हैं जिसका फायदा साहूकार और व्यापारी उठाकर कृषकों से कम कीमत में धान क्रय कर धन लाभ कमाते हैं, इन मुद्दों को दृष्टिगत् रखते हुए मध्य प्रदेश शासन द्वारा मध्य प्रदेश स्टेट सिविल सप्लाईज कार्पोरेशन लिमिटेड के माध्यम से कृषकों को उनकी उपज का उचित मूल्य प्रदाय किया गया। वर्ष 2003–2004 में मध्य प्रदेश स्टेट सिविल सप्लाईज कार्पोरेशन लिमिटेड द्वारा लगभग 13284.00 मी. टन धान उपार्जन किया गया था।

आज पूरा देश ब्रेरोजगारी की समस्या से जूझ रहा है। यदि नई पीढ़ी को स्थानीय स्तर पर शासन द्वारा संचालित योजनाओं से जोड़कर स्वरोजगार से जोड़ने के प्रयास किए जाएं तो कुछ हद तक इस समस्या का निदान हो सकता है। यह कार्य आसान नहीं है, किंतु असंभव भी नहीं है, इसके लिए जरूरत है योजनाओं का संचालन करने वाले अधिकारियों की दृढ़ इच्छाशक्ति की।

अनूपपुर एवं शहडोल जिलों की प्रमुख फसल धान है। जिले में विष्णुभोग, विश्नी तथा लोंहदी आदि उच्च गुणवत्ता एवं स्वाद वाली धान की फसलें पैदा होती हैं। जिले का गरीब किसान इन उच्च कोटि की धान पैदा करता तो है लेकिन स्वयं के भोजन के लिये नहीं, अपितु वह अपनी धान बाजार में

व्यवसायियों को कम दर पर बेच देते हैं, जिनकी मिलिंग कर व्यवसायी उच्च दर पर बाजारों में बेचकर अच्छा लाभांश प्राप्त करते हैं, और गरीब कृषक की आर्थिक स्थिति दयनीय ही बनी रहती है।

जिले में गठित स्व–सहायता समूहों को स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना के तहत् ऋण व अनुदान उपलब्ध कराकर सिंगल पास मिनी राइस मिल उपलब्ध कराई। कार्यक्रम के प्रथम चरण में अनूपपुर जिले के ग्राम मौहरी जनपद पंचायत कोतमा, गांव जनपद पंचायत पुष्पराजगढ ग्राम पगना जनपद पंचायत बुढार के 04 स्वसहायता समूहों द्वारा निर्मित केंद्र शहडोल में धान मिलिंग का कार्य किया जा रहा है। इससे 15 स्व–सहायता समूहों को लगभग 6 माह तक लगातार रोजगार उपलब्ध हो सकेगा, और गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन करने वाले स्वरोजगारियों के जीवन स्तर में सुधार होगा। इससे स्व–सहायता समूहों के सशक्तिकरण में एक अभिनव कदम सिद्ध होगा तथा आत्म निर्भरता और आत्म विश्वास जागृत होने से स्वावलंबी बनेंगे।

जिला पंचायत द्वारा किए गए प्रयास

- जिला पंचायत शहडोल द्वारा अनूपपुर जिले के धान उत्पादन वाले जनपदों अनूपपुर, पुष्पराजगढ़, जैतहरी तथा कोतमा एवं शहडोल जिले के बुढार, जैसिंहनगर, गोहपारू जनपद के धान उत्पादन वाले क्षेत्रों को इस कार्य हेतु चिन्हित किया गया।

बैंकों द्वारा वित्त पोषित स्वसहायता समूहों का विवरण

जिले का नाम	क्रमांक	जनपद पंचायत का नाम	ग्राम का नाम
	1	जैसिंहनगर	क्याडीखुर्द
	2	गोंहपारू	अंकुरी
	3		खाम्हा
	4		पकरिया
शहडोल	5		चंगेरा
	6	बुढार	हथगला
	7		पैरीबहरा
	8		बोकरामार
	9		खम्हरोंध
अनूपपुर	1	अनूपपुर	चुकान
	2	कोतमा	मौहरी
	3		पगना
	4	जैतहरी	सिंधौरा–1
	5		सिंधौरा–2
	6	पुष्पराजगढ़	सरवाही

- वर्ष 2002–03 में ग्राम सभा के माध्यम से स्वसहायता समूहों का चयन किया गया तथा स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना के तहत प्रत्येक समूह के रु. 2.50 लाख के प्रकरण बैंकों का संबंधित जनपद पंचायतों के माध्यम स्वीकृत कराया गया।

शहडोल एवं अनूपपुर कलेक्टर के ध्यान में इन बातों के आने पर संयुक्त प्रयास करके जिला पंचायत शहडोल के माध्यम से स्वर्ण जयंती स्वरोजगार योजना द्वारा उपयुक्त स्वसहायता समूहों (धान उत्पादन वाले क्षेत्रों) का चयन करके इस कार्य को उन्हीं किसानों के माध्यम से कराने का निर्णय लिया गया जो इस धान का अपनी मेहनत से उत्पादन करते हैं, इस कार्य से गरीब परिवारों को वर्ष भर का रोजगार उपलब्ध होगा।

प्रारंभिक समस्याएं

संबंधित गांवों में इन धान की मिलों की स्थापना कराने से कई समस्याएं सामने आईं–

- ग्रामीण अंचलों में आंशिक विद्युत की आपूर्ति।
- मिलिंग के लिए पर्याप्त मात्रा में धान उपलब्ध न होना।
- परिवहन की समस्याएं।
- उपर्युक्त समस्याओं पर डीएलसीसी में व्यापक विचार–विमर्श करने के उपरांत इन सभी स्वसहायता समूहों की राइस मिलों को निकटतम स्थापित कर पर्याप्त कार्य उपलब्ध कराने तथा नियमित विद्युत आपूर्ति कराने का निर्णय लिया गया।
- जिले में शेड की व्यवस्था : जिले स्तर पर लिए गए निर्णय के अनुसार शहडोल जिले में स्थिति निर्मिति केंद्र में इन सभी राइस मिलों को जगह उपलब्ध कराई गई।
- विद्युत समस्या का निदान : नियमित विद्युत आपूर्ति उपलब्ध कराने के उद्देश्य से स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना की अधोसंरचना मद से ट्रांसफार्मर स्थापित कराने एवं नियमित विद्युत आपूर्ति उपलब्ध कराने हेतु 2.00 लाख रुपये व्यय किए गए।
- धन की पर्याप्त उपलब्धता हेतु नागरिक आपूर्ति निगम से अनुबंध – स्वसहायता समूहों को पर्याप्त मात्रा में काम मिले इस उद्देश्य से इन स्वसहायता समूहों का राशन द्वारा धान खरीदने वाली एजेंसी नागरिक आपूर्ति निगम से अनुबंध कराया गया अनुबंध की शर्तें निम्नलिखित हैं:–
- नागरिक आपूर्ति निगम स्वसहायता समूहों द्वारा मिलिंग हेतु आवश्यक धान की नियमित आपूर्ति करेगा।
- स्वसहायता समूह को नागरिक आपूर्ति निगम से धान प्राप्त करने हेतु धान के मूल्य के बराबर नगद राशि या बैंक गारंटी नागरिक आपूर्ति निगम में जमा करनी होगी। नागरिक आपूर्ति निगम धान स्वसहायता समूह के वर्कशाप तक पहुंचाकर देगा।
- स्वसहायता आपूर्ति निगम द्वारा स्वसहायता समूहों को 15 रुपये प्रति क्विंटल के मान से मिलिंग चार्ज देगा। साथ ही समूह मिलिंग के पश्चात धान की मात्रा का 67 प्रतिशत चावल भारतीय खाद्य निगम के गोदाम तक पहुंचाएगा। अतिरिक्त (वाय प्रोडक्ट) उत्पाद समूह का होगा।

शासन से अपेक्षाएं

- स्वसहायता समूह द्वारा की गयी धान मिलिंग के पश्चात प्राप्त चावल को भारतीय खाद्य निगम के गोदाम तक पहुंचाने का व्यय तथा लोडिंग एवं अनलोडिंग चार्ज नागरिक आपूर्ति निगम द्वारा वहन किया जाए, क्योंकि वर्तमान में धान मिलिंग का कार्य 200–300 कि.मी. दूरी पर स्थित धान मिलों द्वारा किया जा रहा था, जिसका स्थल तक पहुंचाने का व्यय नागरिक आपूर्ति निगम द्वारा वहन किया जाता था।
- मिलिंग के पश्चात 67 प्रतिशत चावल प्राप्त नहीं होता है, इसलिए चावल की मात्रा 65 प्रतिशत कर दी जाए।
- धान मिलिंग का चार्ज बढ़ाया जाए जो कम से कम स्थानीय बाजार दर के बराबर हो।
- वर्तमान में मध्य प्रध्य विद्युत मंडल द्वारा स्वसहायता समूहों से वाणिज्यिक दर से बिजली का चार्ज लिया जा रहा है। स्वसहायता समूहों के माध्यम से गरीबी रेखा के नीचे के परिवारों को रोजगार से जोड़ा गया है, वर्तमान में इन समूहों के सदस्य इस कार्य में बहुत अधिक प्रशिक्षित नहीं हैं और न ही इनमें वाणिज्यिक जानकारियां हैं, इसलिए शासन स्तर से बिजली दरों पर अनुदान की सुविधा भी दिलायी जाए। ❑

(लेखक जिला पंचायत, शहडोल (म.प्र.) में सूचना सहायक हैं)

गन्ने की खेती ने बदली तस्वीर

पूषण कुमार

छत्तीसगढ़! सतपुड़ा मैकल की श्रेणियों से आच्छादित नवोदित जिला कबीरधाम वृष्टिछाया प्रदेश के अंतर्गत सम्मिलित है। इसी जिले के छोटे से गांव राम्हेपुर में छत्तीसगढ़ शासन द्वारा प्रथम सहकारी शक्कर कारखाना की स्थापना की गई है। अपनी स्थापना के बाद इस छोटी कार्य अवधि में ही इस कारखाने ने अंचल के विकास और प्रत्यक्ष रूप से मानव शक्तियों को रोजगार में नियोजित करने के साथ–साथ क्षेत्र के कृषकों को लाभदायक कृषि के लिए प्रोत्साहित किया है। अब तक क्षेत्र में पारंपरिक रूप से मानसून आधारित धान की खेती का ही वर्चस्व रहा है, लेकिन जिले में स्थापित भोरमदेव सहकारी शक्कर कारखाने ने इस मिथक को तोड़ने में बड़ा योगदान दिया है।

जिले के बोड़ला विकास खंड के गांव लेंजाखार के कृषक बहोरी वर्मा ने बताया कि वे पिछले दो वर्षों से गन्ने की व्यावसायिक खेती कर रहे हैं, जिसमें उन्हें धान के मुकाबले दोगुना लाभ हुआ है। गांव के ही खेतिहर मजदूर आनंद यादव ने भी गन्ने की लाभदायक कृषि से प्रोत्साहित होकर गांव में ही 85 डिसमिल जमीन रेगहा (लीज में) लेकर गन्ने की फसल लगाई है। आस–पास के क्षेत्रों में लहलहा रही गन्ने की फसल ने क्षेत्र के कृषकों को उत्साहित कर उनकी मेहनत को सार्थक रूप दिया है। लेंजाखार, लखनपुर, नेऊरगांवखुर्द, मारियोटोला, हरीनछपरा, पोंडी, राम्हेपुर आदि गांवों में कृषक अपनी 85 प्रतिशत जमीन में गन्ने की खेती कर रहे हैं। अधिकतर कृषकों ने बताया कि उन्हें गन्ने के व्यावसायिक उत्पादन के लिए स्थानीय शक्कर कारखाना के अधिकारियों का समुचित मार्गदर्शन और प्रशिक्षण समय–समय पर प्राप्त होता रहता है। कृषक गन्ने की खेती के लिए डी.ए.पी., यूरिया, सुपरफास्फेट आदि उर्वरकों के साथ–साथ कीटनाशक के रूप में 'चुना' 'फोरएट' आदि का इस्तेमाल करते हैं। जैविक कीटनाशी के प्रयोगों के बारे में कृषक पहल कर रहे हैं, लेकिन अभी यह ठीक से प्रचलन में नहीं आ पाया है। सिंचाई व्यवस्था के लिए चिल्फीमंडला रोड पर स्थित गांव बांधाटोला के छीरपानी जलाशय से समुचित पानी की व्यवस्था भी की जाती है।

इससे पूर्व कवर्धा अंचल में पारंपरिक रूप से गन्ने की खेती स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति तथा गुड़ बनाने के लिए छोटे पैमाने पर करते रहे हैं, लेकिन छत्तीसगढ़ शासन की संवेदनशील सोच और परंपरागत प्रयास को व्यावसायिक स्वरूप देने की पहल ने क्षेत्र के कृषकों को उत्साहित किया है। विश्वास है, शासन तथा समुदाय के इस समन्वित प्रयास से राज्य के इस निर्धनतम जिले को प्रगति की सकारात्मक दिशा मिल पाएगी। ❑

(लेखक स्वतंत्र पत्रकार हैं)

शारदा बचत समूह का रिवाल्विंग फंड

श्योपुर कराहल विकास खंड में श्रीपुरा ग्राम में बी.पी.एल. परिवार के सदस्यों द्वारा शारदा स्वसहायता समूह का गठन किया गया, समूह में 10 महिलाएं हैं समूह गठन के समय सभी सदस्यों ने प्रति सदस्य रुपये 30/– प्रतिमाह बचत करने की सहमति दी वर्तमान में समूह के खाते में रुपये 2700/– कुल बचत है। समूह के सदस्यों की प्रमुख गतिविधि सब्जी विक्रय करना है।

समूह गठन के 6 माह पश्चात प्रथम ग्रेडिंग उत्तीर्ण करने के बाद समूह को 10000/– राशि रिवाल्विंग फंड के रूप में स्वीकृत की गई। समूह ने सदस्यों को सामाजिक, आर्थिक जरूरतों के मुताबिक ऋण भी उपलब्ध कराया

समूह के सभी सदस्य यथासमय ऋण की वापसी 2 प्रतिशत ब्याज प्रतिमाह की दर से करते हैं।

इस समूह ने अपनी आय में वृद्धि के लिए जहां एक ओर बिना किसी शासकीय सहायता की प्रतीक्षा किए अपनी बचत में से सदस्यों की सामाजिक – आर्थिक जरूरतों के लिए उधार दिया और सदस्यों ने भी उसे यथासमय वापिस किया। सदस्यों के अलावा समूह ने अन्य ग्रामीण महिलाओं को ऋण आवश्यकता को पूर्ण करने का प्रयास किया।

इस प्रकार समूह ने समय–समय पर अपने सदस्यों की ऋण आवश्यकताओं की पूर्ति कर बिना किसी शासकीय सहयोग की अपेक्षा रखे अपनी आर्थिक गतिविधि को जारी रखा। इससे इन महिलाओं के जीवन में नया सवेरा हुआ। ❑

डा बृजनाथ सिंह
(जनसंपर्क अधिकारी जिला पंचायत, श्योपुर)

लोक कलाकार भंवरी देवी

ओम प्रकाश कादयान

लोक कला लोक में ही पलती है और सदा से ग्रामीण नर–नारियों के हाथों से पोषित तथा पल्लवित होती रही है। यह एक सामाजिक सत्य है कि लोक कला को जन्म देने वाले, पोषित करने वाले व नित नए आयाम, नए रूप प्रदान करने वाले अधिकतर अनपढ़ नर–नारियां ही रहे हैं। लोक कला के सृजन में ग्रामीण नारियों का योगदान अधिक रहा है। जो घर का कामकाज निपटा कर खाली समय में एक, दो या फिर समूह में बैठकर लोक कला कृतियों का सृजन करती हैं। इन्हीं कृतियों में हमारी लोकांचलों की परंपराएं, मान्यताएं, रीति–रिवाजों या फिर प्रकृति के दर्शन होते हैं।

राजस्थान के नागौर जिले में स्थित छोटा–से गांव भांवता की 52 वर्षीय भंवरी देवी एक ऐसी लोक कलाकार हैं जिन्होंने लोक कला को न केवल प्राणवान रखा है बल्कि इसे एक नई विकास गति देकर विदेशों तक पहुंचाया है। कभी स्कूल का मुहं न देखने वाली भंवरी देवी ने कभी सोचा भी नहीं था कि जिस कला के महत्व से वह अनजान थी, वह एक दिन उसे प्रसिद्धि के मुकाम तक पहुंचाएगी तथा शिल्प ग्रामों, सांस्कृतिक मेलों की शोभा बढ़ाकर चितेरों से इतना आदर पाएगी।

माचिस की खाली डिबिया से बनाए खिलौने, इंढी, झुंझुना एवं कपड़े के अन्य खिलौने बना–बनाकर अपना शौक पूरा करने में लगी भंवरी देवी आज इन्हीं की बदौलत देश की अनेक हस्तियों से मिल चुकी हैं एवं अनेक सम्मानों से भी सम्मानित की जा चुकी हैं।

बवली गुढा (कुचामान नगर) में जन्मी भंवरी देवी का विवाह समीप ही स्थित भांवता के एक गरीब परिवार से जुड़े मंगलाराम लीलड़ से हुई। यहां आकर गरीबी के कारण मजदूरी करके उसने अपना पेट पाला। साथ–साथ घर पर वह काचली, इंढी, बंदरवाल एवं ओढ़नी पर गोटे की कशीदाकारी करती रहीं। इसी बीच मजदूरी के लिए वह अपने परिवार के साथ दिल्ली चली गईं। दिल्ली में सूरजकुंड मेले में उसने मजदूरी का काम किया। मेले में हस्तशिल्प की दुकानें देखकर उसका शौक एक बार फिर जाग उठा। बस फिर क्या था वह पुनः जुट गई अपनी कला को पुनर्जीवित करने में। धुन की पक्की भंवरी देवी ने 1987 में सर्वप्रथम थोड़े से सामान के साथ मेले में अपनी दुकान लगाई। लोगों की जानकारी में आते ही शुरू हुआ उसकी कला को एक नया आयाम मिलने का सिलसिला। हरियाणा टूरिज्म के आला अधिकारियों ने उसके इस काम में पूरा सहयोग दिया जिसकी बदौलत 1992 में सूरजकुंड प्राधिकरण द्वारा भंवरी देवी को इस कला के लिए 'कला श्री' पुरस्कार से सम्मानित कर प्रशंसा पत्र एवं शील्ड प्रदान की गई। उसके बाद भंवरी देवी ने अपने पति के साथ प्रगति मैदान, जबलपुर एवं उदयपुर के मेलों में भी भाग लिया। पति के स्वर्गवास के बाद भी उसने हिम्मत नहीं हारी एवं अपने बेटों मदन एवं सज्जन के साथ कई मेलों में भाग लिया। 1993 में उसे उदयपुर में आयोजित राजस्थानी पोशाक प्रतियोगिता में दूसरा, 1995 में सूरजकुंड शिल्प मेले में हरियाणा सरकार द्वारा 5 हजार रुपये का पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

ग्राम भांवता (राजस्थान) की भंवरी देवी लीलड़ को राष्ट्रीय शिल्पग्राम से सम्मानित किया गया। उन्हें भारत सरकार के अधीन संस्कृति मंत्रालय के सांस्कृतिक केंद्र उदयपुर की ओर से 'शिल्प सम्मान' प्रदान किया गया।

ग्रामीण परिवेश में पली–बढ़ी, अनपढ़ भंवरी देवी लीलड़ हस्त शिल्प के काम की बदौलत प्रसिद्ध सौंदर्य विशेषज्ञ शहनाज हुसैन, अभिनेत्री एवं समाज सेविका शबाना आजमी, सिक्किम के मुख्यमंत्री से मिलकर प्रशंसा पा चुकी हैं।

भंवरी देवी वैसे तो बचपन से ही इस कला से जुड़ी हैं, लेकिन 1987 से गहन रूप से जुड़ी हुई हैं। भंवरी देवी आजतक राजस्थान, पंजाब, चंडीगढ़, हरियाणा, दिल्ली, गुजरात, भोपाल, मध्य प्रदेश, हैदाराबाद, विशाखापतनम, गोवा, बैंगलूर, ग्वालियर, उ.प्र., हिमाचल प्रदेश इन जगहों पर अपनी कला का प्रदर्शन कर चुकी हैं। उनके इस कार्य में पुत्र मदन का सहयोग रहता है।

भंवरी देवी लीलड़ तथा इसी कला से जुड़े उनके पुत्र मदन लीलड़ को शिकायत है कि वर्तमान में इस कला की स्थिति तो ठीक है लेकिन सरकार द्वारा हमें साल में एक या दो ही प्रदर्शनी लगाने को मिलती हैं। इसलिए हमें यह माल बेचने में कठिनाई होती है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि उत्तर भारत में भंवरी देवी उन चंद महिला लोक कलाकारों में से एक हैं जो लोक कला के सृजन और विकास में लगी हुई हैं। ❑

(लेखक: स्वतंत्र पत्रकार हैं)

झारखंड का टुसू पर्व

भीष्मदेव महतो

सुरम्य प्रकृति की गोद में पर्वत शृंखलाओं से अविष्ठित झारखंड प्रदेश की राजधानी रांची है। बिहार, बंगाल और उड़ीसा का सांस्कृतिक संगम यहां के लोगों के रहन–सहन एवं भाषा में स्पष्ट देखने को मिलता है। झारखंड के नाम विख्यात इस भू–भाग की अपनी कुछ सांस्कृतिक विशेषताएं हैं। टुसू पर्व उनमें प्रमुख है।

इस प्रदेश में विशुद्ध आनंद प्राप्ति के लिए वर्ष के अंत में जो उत्सव मनाया जाता है, उसे टुसू पर्व की संज्ञा प्राप्त है। यह बंगला तिथि के अनुसार वर्ष के अंत में पौष सक्रांति के दिन तथा नव वर्ष के प्रथम यानी पहली माघ को मनाया जाता है। इस अवसर पर सुवर्ण रेखा, कांची और राटू नदी के संगम स्थल से करीब आधा किलोमीटर दक्षिण, जहां सुवर्ण रेखा नदी प्रायः नब्बे डिग्री का कोण बनाती है, के तट पर बड़ा मेला लगता है। मकर संक्रांति के दिन तथा उसके दूसरे दिन सुदूरवर्ती तथा बंगाल के लोग काफी तादाद में स्नान करने एवं दुकानदारी हेतु एकत्रित होते हैं। टुसू पर्व झारखंड प्रदेश के अलावा पश्चिम बंगाल के पुरुलिया, वीरभूम, मालदा, वर्द्धमान, बाकुड़ा, मिदनापुर और 24 परगना में भी बड़े ही धूमधाम के साथ मनाया जाता है। इस पर्व को विकसित करने एवं झारखंड की कला, संस्कृति एवं नृत्य को विकसित करने के उद्देश्य से विगत वर्ष 2001 से प्रति वर्ष शिक्षित बेरोजगार संघ *झारखंड टुसू सांस्कृतिक महोत्सव* का आयोजन करता है।

टुसू पर्व का शुभारंभ अगहन संक्रांति के दिन से होता है। इस रोज सभी गांव की अविवाहित लड़कियां अपने–अपने गांव में एक जगह एकत्रित होकर एक समिति का गठन करती है तथा एक खास स्थान का चयन कर उस जगह को गोबर से लीप देती हैं। उसके बाद बांस की एक नई टोकरी में एक टुसू मूर्ति रखकर दीप जलाती हुई इस गीत के साथ उद्घाटन करती हैं:–

आमराजे मां टुसू थापी अधन संक्राईत गो।
अवला बाछरेर गोबर आलो चालेर गुड़ी गो।।

इस गीत के बाद टुसू की मूर्ति को एक आसन पर रखते हुए ये गीत आरंभ करती हैं :–

आभार टुसू राजेश्वरी बसेन गो सिंहासने।
काने ढुले गजमुक्त, सोनार नुपुर चरणे।
आमार टुसू मान करेछे मान गेलो तोर सारा रा।
खुल टुसू मनेर कपाट आहेन तोमार प्राणनाथ।।

इसी प्रकार ग्रामीण लड़कियां एक महीने तक प्रत्येक दिन स्थापना की जगह एकत्रित होकर पहले दीप जलाकर आरती उतारती हैं और टुसू गीत गाती हैं।

टुसू गीतों का सृजन विभिन्न परिस्थितियों में हुआ जान पड़ता है। अगहन महीने में खेतों में काम करती हुई स्त्रियां थकान दूर करने के लिए टुसू गीत गाती हैं। इन गीतों का विषय प्रायः पारिवारिक घटनाओं, रामायण, महाभारत की कथा और देवी–देवताओं की मनौती से प्रारंभ होता है। टुसू गीतों में दिमागी कसरत नहीं करनी पड़ती है, वरन् ये गीत बरबस मुंह से निकल जाते हैं– कुछ उदाहरण देखे जा सकते हैं :–

वापेर घेर बड़ो सुख मां,
कांखे गागोइर चाल भाजा।
ससुर घरे बड़ो दुख मां,
लोग बुझाते जाय बेला।।
आमिराज नंदिनी।
स्वामी आमार रामचंद रघुमनि।
जनक–जनक आमार,
वसुंधरा जननी।
लांगले जनम आमार,
नाम सीता ठाकुरानी।।

टुसू की पालकी चौड़ल

मकर संक्रांति के एक सप्ताह पहले चौड़ल या तो बाजार से खरीदा जाता है, या गांव के किसी कारीगर से बनवाया जाता है। चौड़ल असल में टुसू की पालकी है, जो लाल, पीले,

हरे रंग के कागज द्वारा पतली लकड़ियों की सहायता से मंदिर के आकर का बनाई जाती है। मकर संक्रांति के दिन गांव की अविवाहित लड़कियां बांस की टोकरी उठाकर पवित्र नदी या तालाब में जाकर विसर्जित कर देती हैं। दूसरे दिन यानी पहली माघ को नहा–धोकर टुसू की मूर्ति को चौड़ल में रखकर विसर्जित करने के लिए ले जाती हैं।

विसर्जन की जगह मेला लगता है, जिसे पौष मेला कहा जाता है। ये लोग दिनभर मेला में घूमते हुए अपनी जरूरत के सामान खरीदकर बड़े उल्लास के साथ शाम को घर लौट जाते हैं। उसी दिन से टुसू गीत गाना बंद हो जाता है। लेकिन महीनों तक हमारे कानों में टुसू गीतों के स्वर गूंजते रहते हैं। इस प्रकार पहली माघ को शाम में टुसू पर्व समाप्त हो जाता है। ❑

(लेखक टुसू पर्व के आयोजक हैं।)

मलेरिया : एक अंतर्राष्ट्रीय चुनौती

डा. विनोद गुप्ता

विश्व स्वास्थ्य संगठन और यूनिसेफ द्वारा जारी मलेरिया रिपोर्ट में कहा गया है कि इससे हर साल तीस करोड़ लोग बीमार पड़ते हैं। दुनिया की वंचित और गरीब आबादी पर मलेरिया का असर सबसे ज्यादा होता है। दुनिया की बीस फीसदी आबादी मलेरिया के प्रभाव क्षेत्र में है। यूनिसेफ, विश्व बैंक, विश्व स्वास्थ्य संगठन और संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम ने मलेरिया उन्मूलन के लिए 1998 में एक कार्यक्रम चलाया था। उद्देश्य था कि वर्ष 2010 तक मलेरिया मौतों की तादाद में 50 प्रतिशत से अधिक की कमी आए, लेकिन इसके लिए मजबूत इच्छा शक्ति और भारी निवेश की आवश्यकता है। अंतर्राष्ट्रीय समुदाय को इसके लिए भारी आर्थिक संसाधन जुटाने होंगे। संयुक्त राष्ट्र संघ के अधिकारियों का कहना है कि अगर अंतर्राष्ट्रीय समुदाय ने एकजुट होकर मलेरिया के खतरे का सामना नहीं किया, तो भविष्य में यह बीमारी घातक चुनौती बनकर उभरेगी जिसकी चपेट में दुनिया के कई देश आ जाएंगे।

पूरा अफ्रीकी महादेश मलेरिया की चपेट में है और वहां रोजाना हजारों बच्चे मलेरिया से मर रहे हैं। आज अफ्रीका में गर्भवती महिलाओं और उनके नवजात शिशुओं के लिए मलेरिया जानलेवा साबित हो रहा है। अफ्रीका में पांच वर्ष से कम उम्र के बच्चों पर मलेरिया का सर्वाधिक असर देखा जाता रहा है। सहारा मरुस्थल के दक्षिण स्थित सभी देशों में मलेरिया पैदा करने वाले मच्छरों की आबादी खतरनाक रूप से बढ़ रही है। जब तक पूरी दुनिया इस बीमारी से मुकाबला करने के लिए एकजुट नहीं होती, इसके चंगुल में हजारों मौतें होती रहेंगी।

मलेरिया का प्रसार दुनिया के 90 देशों में व्यापक रूप से है। हालांकि उष्णकटिबंधीय इलाके में इसका फैलाव ज्यादा है। मलेरिया से होने वाली मृत्यु की संख्या 30 साल पहले के मुकाबले ज्यादा है। इस बीमारी के घातक होने की वजह यह है कि मलेरिया का प्रतिजीवी अपने आपको ड्रग रेसिस्टेंट बना लेता है।

तमाम सरकारी प्रयासों के बावजूद मलेरिया के प्रकोप में कमी लाने में सफलता नहीं मिल सकी है। बल्कि विश्व स्वास्थ्य संगठन ने चेतावनी दी है कि तापमान बढ़ने से मच्छरों की भरमार होने का खतरा है और इससे मलेरिया का रोग भी बढ़ जाएगा।

मलेरिया विशेषज्ञों का मानना है कि मलेरिया नियंत्रण कार्यक्रम इस समय संकट की स्थिति में है। जिससे निपटने के लिए अब वैकल्पिक उपायों की जरूरत है। मलेरिया नियंत्रण के पुराने तरीके अब कारगर नहीं हो पा रहे हैं।

मलेरिया उन्मूलन में सबसे बड़ी दिक्कत यह आ रही है कि मलेरिया के मच्छर और वे जिन कीटाणुओं को फैलाते हैं, दोनों आज इस लायक हो गए हैं कि उनको खत्म करने के लिए तैयार की गई किसी भी कीटनाशक दवा का उन पर कोई असर नहीं होता। कुछ समय पूर्व वाशिंगटन स्थित वर्ल्ड रिसोर्सेज इंस्टिट्यूट ने एक अध्ययन में बताया था कि मलेरिया फैलाने वाले एनोफ्लीज मच्छरों की 60 प्रजातियों में से 51 प्रजातियों के मच्छरों में विभिन्न कीटनाशकों का प्रतिरोध करने की शक्ति आ गयी है। परिणामस्वरूप अब तक की कीटनाशक दवाएं बेअसर हो गईं। डीडीटी का उन पर कोई असर नहीं हो रहा। नयी रसायनिक दवाएं काफी महंगी हैं, जिनका इस्तेमाल व्यापक पैमाने पर संभव नहीं है।

मच्छरों द्वारा फैलाये जाने वाले मलेरिया के कीटाणुओं में भी अब पूरी प्रतिरोधक शक्ति आ गयी है। पहले कुनेन से ये कीटाणु नष्ट हो जाते थे। वर्तमान में क्लोरोक्वीन का इस्तेमाल किया जा रहा है, लेकिन वह भी शत-प्रतिशत सफल नहीं है और मलेरिया के कीटाणुओं पर वह बेअसर हो जाता है।

मलेरिया एक परजीवी रोगाणु होता है, जिसे प्लास्मोडियम कहते हैं। मादा एनोफ्लीज मच्छर के पेट में ये रोगाणु पलते हैं। पेट का संबंध एनोफ्लीज के मुंह की लार ग्रंथियों से रहता है। अर्थात प्लास्मोडियम रोगाणु एनोफ्लीज के मुंह में आते-जाते रहते हैं। जब कभी मादा एनोफ्लीज किसी मनुष्य को काटती है, तो ये रोगाणु उसके खून में प्रवेश कर जाते हैं।

मलेरिया चार प्रकार के परजीवियों द्वारा होता है। ये परजीवी हैं, प्लाज मोडियम वाइवेक्स, प्लाजमोडियम फैल्सिपैरम, प्लाजमोडियम ओवेल तथा प्लाजमोडियम मलेरिया। विश्व में प्लाजमोडियम वाइवेक्स का ही प्रचलन अधिक है।

मच्छरों के लिए 68 डिग्री फारेनहाइट से 86 डिग्री फारेनहाइट का तापमान सर्वाधिक अनुकूल रहता है और वे इसमें सक्रिय होकर मलेरिया फैलाते हैं। बरसात के दिनों में तो मच्छरों की भरमार हो जाती है।

जब कभी किसी कीट से होने वाले रोग की रोकथाम की बात होती है, तो सबसे सफल हथियार डीडीटी को माना जाता है, लेकिन मच्छरों में इसके प्रति प्रतिरोध शक्ति आ गई है और यह कीटनाशक उन पर बेअसर हो रहा है। चिकित्सा विज्ञानी अब एक ऐसा टीका बनाने की कोशिश में लगे हैं जो मनुष्य का खून चूसते ही मच्छर की जान ले लेगा। इस टीके का प्रयोग अभी शुरुआती दौर में है, पर यदि इस टीके का प्रयोग सफल रहा, तो लोगों को मच्छर तो काटेंगे, पर मलेरिया नहीं होगा। कोलोराडो स्थित फोर्ट कालिंस के कोलोराडो स्टेट यूनिवर्सिटी के आणविक जीव विज्ञानी और कीट विज्ञानी ब्रायन फोए इस दिशा में कार्य कर रहे हैं।

एडिनबरा विश्वविद्यालय में सेल एंड

मोलेकुलर बॉयोलॉजी विभाग के वैज्ञानिकों ने एक प्रोटीन के उस खास हिस्से को अलग कर लिया है, जो मलेरिया पर नई दवाओं का पूरा असर नहीं होने देता। नए शोध का विवरण 'नेचर स्ट्रक्चरल बॉयोलॉजी' नामक पत्रिका में छापा गया है। माना जा रहा है कि नई खोज से मलेरिया के लिए नई प्रभावी दवाएं विकसित करने में मदद मिलेगी।

स्कॉटलैंड में एडिनबरा विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों ने बैंकॉक के बायोटेक इंस्टीट्यूट के साथ मिलकर उस प्रोटीन पर ध्यान केंद्रित किया, जो मलेरिया की दवाओं को नकारा करने की ताकत देता है। वैज्ञानिकों के अनुसार इस प्रोटीन का नाम डी.एच.एफ.आर. है, जो मलेरिया परजीवी खुद को जीवित रखने के लिए पैदा करती है। वैज्ञानिकों ने इस प्रोटीन के उस खास हिस्से को अलग कर लिया है, जो परजीवी को मलेरियारोधी दवाओं में प्रयुक्त पाइरिमेथामाइन नामक रसायन को बेअसर करने लायक बनाता है। अब इस प्रोटीन स्ट्रक्चर को मलेरिया परजीवी की प्रतिरोधी क्षमता को काबू करने में सक्षम दवाओं के निर्माण में इस्तेमाल करेंगे। इस प्रोटीन का अध्ययन काफी समय से किया जा रहा था, लेकिन पहली बार इसकी बनावट का पता चल पाया है। यह एक बड़ी सफलता है।

नॉर्थ कैरोलीना स्टेट यूनिवर्सिटी के कीट विज्ञानी डा. माइकल रो ने टमाटरों का अध्ययन कर पाया कि इसमें भी एक ऐसा रसायन होता है, जो कीटों को ज्यादा प्रभावी तरीकों से भगाता है। टमाटर में पाए जाने वाले रसायन को आईबीआई 246 नाम दिया गया है और यह माना जा रहा है कि इसका उपयोग अब मच्छर और कीट भगाने वाली दवाइयों और स्प्रे में किया जाने लगेगा। फैडरल एनवायरमेंट प्रोटेक्शन एजेंसी का आकलन है कि हर साल कम से कम एक तिहाई अमेरिकी मच्छर भगाने वाली दवाओं या स्प्रे का उपयोग करते हैं। इसके कारण त्वचा के लाल पड़ने, खुजली, सूजन आंखों में जलन और निर्णय न ले पाने की स्थिति पैदा होने का खतरा रहता है, जबकि टमाटर में पाए जाने वाले रसायन से ये खतरे दूर हो जाते हैं।

डा. रो ने जब आईबीआई 246 का परीक्षण मच्छरों पर किया, तो उसके आश्चर्यजनक परिणाम सामने आये। इससे मच्छर तो भागे ही, पिस्सु, कॉकरोच, चींटियां, काटने वाली मक्खियां और फसल खाने वाले कीट भी भाग खड़े हुए। उन्होंने बताया कि इस रसायन का उपयोग सौंदर्य प्रसाधन बनाने में किया जाता है, इसलिए इसके शरीर पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने का तो प्रश्न ही नहीं उठता है। फिर यह टमाटरों में पाया जाने वाला प्राकृतिक रसायन है और इसका कोई दुष्प्रभाव भी नहीं होता है।

जन स्वास्थ्य के क्षेत्र में मलेरिया अत्यंत ही जटिल समस्या बनी हुई है। इस समस्या के लिए मलेरिया अनुसंधान केंद्र ने एक नवीन पद्धति का विकास किया है जिसे "जैव पर्यावरण नियंत्रण पद्धति" (बायो-एनवायरनमेंटल कंट्रोल) कहते हैं।

इस पद्धति में विषैले कीटनाशियों के प्रयोग को कोई स्थान नहीं दिया जाता है, अपितु पारिस्थितिकी (इकोलाजी) और पर्यावरण (एनवायरनमेंट) में ऐसे निर्दोष और समाज द्वारा स्वीकार्य परिवर्तन किए जाते हैं, जिससे मलेरिया की समस्या का स्थायी समाधान हो जाता है। यह मलेरिया के वाहक मच्छरों की वृद्धि रोकने की एक नयी पद्धति है।

आर्थिक दृष्टि से यह पद्धति सबसे सस्ते कीटनाशी (डीडीटी) के छिड़काव पर होने वाले खर्च के समान है, मच्छरों के विनाश के लिए उनके प्राकृतिक शत्रुओं का उपयोग किया जाता है। विशेष प्रकार की मछलियों, कृमि, फफूंदी और 'बग' मच्छरों की संख्या में कमी लाते हैं। 'गप्पी' और 'गंबूजिया' जाति की मछलियां बड़ी तीव्रता से मच्छरों के लार्वा का भक्षण करती हैं।

कई वर्षों के गहन अनुसंधान के पश्चात मलेरिया अनुसंधान केंद्र ने 'जैव पर्यावरण नियंत्रण पद्धति' का विकास किया है। इस पद्धति का विस्तृत प्रयोग करने के लिए अनेक स्थानों पर कार्य आरंभ कर दिया गया है। मलेरिया की प्रकृति और व्याप्ति के आधार पर देश के सात अंचल (जोन) बनाए गए हैं जिनमें से प्रत्येक अंचल में प्रयोगात्मक स्थल स्थापित किए गए हैं।

उधर नाइजीरिया में एक ऐसी जड़ी-बूटी की खोज की गई है जो मलेरिया रोकने में सक्षम है। अब इसके अंतर्राष्ट्रीय मानक के हिसाब से परीक्षण किए जा रहे हैं।

न्यूयार्क यूनिवर्सिटी में मेडिकल सेंटर के वैज्ञानिक एक एंटीजन का विकास करने हेतु प्रयत्नशील हैं, ताकि मनुष्य के शरीर में मलेरिया के कीटाणुओं से लड़ने की शक्ति पैदा हो सके। ❑

(लेखक स्वतंत्र पत्रकार हैं)

ग्रामीण सड़कों के लिए विश्व बैंक से सहायता

विश्व बैंक की ओर से वर्ष 2004-05 के दौरान हिमाचल प्रदेश, झारखंड, राजस्थान और उत्तर प्रदेश राज्यों में प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना के लिए प्रथम चरण में 39.95 करोड़ अमरीकी डालर के ऋण की मंजूरी दी गई है। इनमें से 30 करोड़ अमरीकी डालर आईडीए ऋण के रूप में और शेष 9.95 करोड़ अमरीकी डालर आईबीआरडी ऋण के रूप में है। इस राशि में से 38.039 करोड़ अमरीकी डालर (लगभग 1900 करोड़ रुपये) ग्रामीण सड़कों के निर्माण में लगाए जाएंगे और शेष राशि का इस्तेमाल सहायक योजनाओं में किया जाएगा। विश्व बैंक की ओर से दी गई आर्थिक सहायता प्रधानमंत्री ग्रामीण सड़क योजना की राशि के अतिरिक्त है।

इस परियोजना के लिए हिमाचल प्रदेश को 176.60 करोड़ रुपये, झारखंड को 138.70 करोड़ रुपये, राजस्थान को 403.60 करोड़ रुपये और उत्तर प्रदेश को 542.30 करोड़ निर्धारित हैं। यह राशि कुल मिलाकर 1261.20 करोड़ रुपये है। शेष 639 करोड़ रुपये योजनाओं की प्रगति के सापेक्ष में वार्षिक किस्तों के रूप में दिए जाएंगे। ❑

(साभार : प्रेस सूचना कार्यालय)

कुष्ठ रोग को अलविदा कहना होगा

अमिता गर्ग

विश्व स्वास्थ्य संगठन के तमाम दावों के बावजूद आज भी भारत में कुष्ठ रोग से पीड़ित व्यक्तियों की अनुमानित संख्या 15 लाख है जो समूची दुनिया के कुष्ठ रोगियों का 10 से 12 प्रतिशत है। कुष्ठ रोग से प्रभावित अन्य देशों में मुख्यतः ब्राजील, इंडोनेशिया, बंगला देश, म्यांमार और नाइजीरिया हैं। पिछले दो दशकों में भारत में कुष्ठ रोग का आपात घटा है जो संतोष की बात है। हाल की एक रिपोर्ट इसकी पुष्टि करती है जिसके अनुसार वर्ष 1981 में देश में प्रति 10,000 व्यक्तियों में कुष्ठ रोग का आपात 51 था जो मार्च 2002 में घटकर 4.2 रह गया। अगर कुष्ठ रोग का राज्यवार अध्ययन करें तो पता चलेगा कि झारखंड, छत्तीसगढ़, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल, तमिलनाडु, महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक और मध्य प्रदेश में देश के कुल 93 प्रतिशत कुष्ठ रोगी हैं। इनमें से सर्वाधिक कुष्ठ रोगी झारखंड में हैं जहां इनकी संख्या प्रति 10,000 पर 12.95, बिहार में यही दर 11.03 और छत्तीसगढ़ में 10.85 है। देश के 12 राज्यों नगालैंड, हरियाणा, पंजाब, मिजोरम, त्रिपुरा, हिमाचल प्रदेश, मेघालय, जम्मू व कश्मीर, राजस्थान, मणिपुर, असम और केरल में प्रति 10,000 पर एक से कम कुष्ठ व्याप्तता दर का अनुमान है। कहने का अर्थ है कि कुष्ठ रोग अभी तक भारत में स्वास्थ्य संकट बना हुआ है।

कुष्ठ रोग के बारे में सबसे अधिक दुर्भाग्यपूर्ण बात इसके बारे में व्याप्त भ्रांत धारणाएं हैं जिनके चलते अनादिकाल से ही कुष्ठ रोगियों को अत्याचार सहने पड़ते हैं। पापों का फल मानकर ऐसे रोगियों को घृणा से देखा जाता रहा है, जो आज तक कायम है। कुष्ठ रोग अति सूक्ष्म 'लेपरि' नामक जीवाणु से होता है जो क्षय रोग के परिवार के जीवाणु से मेल खाता है। यह रोग त्वचा पर संवेदनारहित बदरंग दाग या अंगों में सुन्नता अथवा चेहरे या कानों के किनारों पर लालिमायुक्त छोटी–छोटी गांठों के रूप में जन्म लेता है। यह श्लेशमल झिल्ली, ऊपरी श्वसन मार्ग तथा स्नायुओं को प्रभावित करता है। इस रोग की खोज नार्वे के डाक्टर जी.ए. हैंसन ने की थी। यह कोई दैवी अभिशाप या पैतृक या रतिज रोग नहीं है। यह किसी को भी हो सकता है। देखा गया है कि यह रोग स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों को अधिक होता है। कुष्ठ रोग दो प्रकार का होता है। पहला– संक्रामक या खुले किस्म का जो छुतहा होता है तथा इस प्रकार के रोगी के निरंतर असावधानीपूर्वक संपर्क से स्वस्थ व्यक्ति भी प्रभावित हो सकता है। दूसरा – कुष्ठ सामान्य किस्म का होता है जिसमें त्वचा पर चित्तियां हो जाती हैं तथा इस प्रकार के हिस्से में आंशिक रूप से या पूर्ण रूप से स्पर्श अनुभूति नहीं होती।

यह भ्रांत धारणा है कि कुष्ठ रोग वंशानुगत होता है या इसका कोई उपचार नहीं है। हालांकि 1940 तक कुष्ठ रोग का कोई उपचार नहीं था, लेकिन 1941 में सल्फोन औषधि के आविष्कार के बाद यह रोग नियंत्रण में आ गया। चिकित्सा क्षेत्र के निरंतर अनुसंधान परिणामों के फलस्वरूप यह रोग अब पूरी तरह नियंत्रण में है लेकिन इस रोग के उपचार के मार्ग में रुकावटें हैं। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि कुष्ठ रोग को छिपाया जाता है और जिसका कारण है कुष्ठ रोगी का सामजिक बहिष्कार। यदि समय रहते कुष्ठ रोग का पता चल जाता है तो इसका इलाज संभव है। दुर्भाग्य से ऐसा हो नहीं पाता क्योंकि इस रोग के बारे में अज्ञानता अभी तक बनी हुई है। इस रोग की चिकित्सा एवं रोकथाम के लिए देश में अनेक सरकारी ऐच्छिक संगठन हैं जो कुष्ठ उन्मूलन की दिशा में कार्य कर रहे हैं जिनमें 54 संगठन केंद्रीय सरकार से सहायता/अनुदान प्राप्त कर रहे हैं। अन्य 35 गैर–सरकारी संगठनों को कुष्ठ रोगियों की शल्य चिकित्सा के लिए मान्यता दी गई है तथा इसके लिए उन्हें प्रति कुष्ठ रोगी 25,000 रुपये तक की सहायता उपलब्ध कराई जाती है।

कुष्ठ रोग निवारण से संबंधित गैर–सरकारी स्वैच्छिक संस्थाओं में 'आनंद ग्राम' का प्रमुख स्थान है। पुणे के बाहरी क्षेत्र में स्थित यह कुष्ठ रोगियों का चिकित्सा तथा पुनर्वास केंद्र है जिसकी स्थापना 1965 में की गई थी। आरंभ में बंजर भूमि के बहुत बड़े भाग को आवास योग्य बनाया गया। कुष्ठ रोगियों के अदम्य उत्साह तथा डाक्टर इंदु पटवर्धन के मार्गदर्शन में इसे सरल कर दिखाया। 'आनंद ग्राम' का जन्म मात्र एक घटना नहीं है, यह कुष्ठ रोग के निवारण एवं कुष्ठ रोगियों की पुनर्स्थापना की दिशा में अदम्य साहस का प्रतीक है। देश में ऐसे ही संगठनों की आवश्यकता है ताकि उपचारोपरांत रोगमुक्त लोगों को समाज की मुख्यधारा में सहज रूप से शामिल किया जा सके। यह भी आवश्यक है कि कुष्ठ रोग के बारे में भ्रांतियों का निवारण किया जाए। कुष्ठ रोगियों को नैतिक समर्थन की भी आवश्यकता है, जिसके अभाव में कुष्ठ रोग सामाजिक अभिशाप बन चुका है। अतः घर–घर जाकर कुष्ठ रोगियों को ढूंढ़ने तथा उनके उपचार में हाथ बटाना प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है। असंक्रामक रोगियों को उनकी दैनिक रोजी–रोटी के बारे में भी बाधा नहीं बनना चाहिए। चूंकि संक्रामक कुष्ठ रोग नियमित औषधि सेवन से ठीक हो सकता है अतः ऐसे रोगियों को कुष्ठ केंद्र में भर्ती कराने के लिए प्रेरित करना चाहिए। यदि समय रहते कुष्ठ रोग का पता चल जाता है तो बिना अंगभंग हुए इस रोग का इलाज संभव है। ❑

(लेखिका सिमोमू बोर्डिंग स्कूल, श्री डूंगरपुर (बीकानेर) में अध्यापिका हैं)

2005

नव वर्ष की शुभ कामनाएं

जनवरी

रवि	सोम	मंगल	बुध	गुरू	शुक्र	शनि
30	31					1
2	3	4	5	6	7	8
9	10	11	12	13	14	15
16	17	18	19	20	21	22
23	24	25	26	27	28	29

फरवरी

रवि	सोम	मंगल	बुध	गुरू	शुक्र	शनि
		1	2	3	4	5
6	7	8	9	10	11	12
13	14	15	16	17	18	19
20	21	22	23	24	25	26
27	28					

मार्च

रवि	सोम	मंगल	बुध	गुरू	शुक्र	शनि
		1	2	3	4	5
6	7	8	9	10	11	12
13	14	15	16	17	18	19
20	21	22	23	24	25	26
27	28	29	30	31		

अप्रैल

रवि	सोम	मंगल	बुध	गुरू	शुक्र	शनि
					1	2
3	4	5	6	7	8	9
10	11	12	13	14	15	16
17	18	19	20	21	22	23
24	25	26	27	28	29	30

मई

रवि	सोम	मंगल	बुध	गुरू	शुक्र	शनि
1	2	3	4	5	6	7
8	9	10	11	12	13	14
15	16	17	18	19	20	21
22	23	24	25	26	27	28
29	30	31				

जून

रवि	सोम	मंगल	बुध	गुरू	शुक्र	शनि
			1	2	3	4
5	6	7	8	9	10	11
12	13	14	15	16	17	18
19	20	21	22	23	24	25
26	27	28	29	30		

जुलाई

रवि	सोम	मंगल	बुध	गुरू	शुक्र	शनि
31					1	2
3	4	5	6	7	8	9
10	11	12	13	14	15	16
17	18	19	20	21	22	23
24	25	26	27	28	29	30

अगस्त

रवि	सोम	मंगल	बुध	गुरू	शुक्र	शनि
	1	2	3	4	5	6
7	8	9	10	11	12	13
14	15	16	17	18	19	20
21	22	23	24	25	26	27
28	29	30	31			

सितम्बर

रवि	सोम	मंगल	बुध	गुरू	शुक्र	शनि
				1	2	3
4	5	6	7	8	9	10
11	12	13	14	15	16	17
18	19	20	21	22	23	24
25	26	27	28	29	30	

अक्तूबर

रवि	सोम	मंगल	बुध	गुरू	शुक्र	शनि
30	31					1
2	3	4	5	6	7	8
9	10	11	12	13	14	15
16	17	18	19	20	21	22
23	24	25	26	27	28	29

नवम्बर

रवि	सोम	मंगल	बुध	गुरू	शुक्र	शनि
		1	2	3	4	5
6	7	8	9	10	11	12
13	14	15	16	17	18	19
20	21	22	23	24	25	26
27	28	29	30			

दिसम्बर

रवि	सोम	मंगल	बुध	गुरू	शुक्र	शनि
				1	2	3
4	5	6	7	8	9	10
11	12	13	14	15	16	17
18	19	20	21	22	23	24
25	26	27	28	29	30	31

आर. एन./708/57
डाक-तार पंजीकरण संख्या : डी.एल. 12057/2003-05
आई.एस.एस.एन. 0971-8451, पूर्व भुगतान के बिना आर.एम.एस.
दिल्ली में डाक में डालने के लिए लाइसेंस : यू (डी.एन.) -55/2003-5

R.N./708/57
P&T Regd. No. DL 12057/2003-05
ISSN 0971-8451, Licenced under U (DN)-55/2003-05
to Post without pre -payment at R.M.S. Delhi.

प्रो. उमाकांत मिश्र, निदेशक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाऊस, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित और मुद्रित।
मुद्रक : अरावली प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स प्रा. लि., डब्ल्यू-30 ओखला इंडस्ट्रीयल एरिया-II, नई दिल्ली-20 : संपादक : स्नेह राय